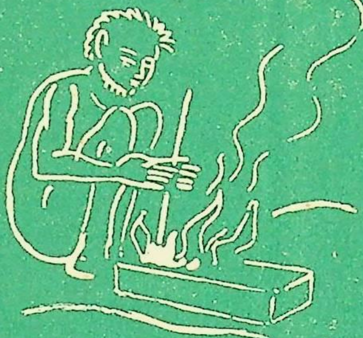
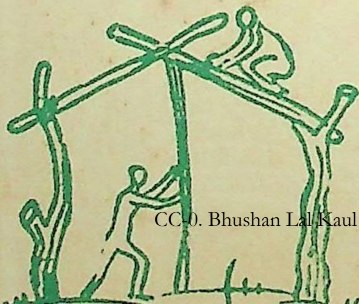
भगवतशरण उपाध्याय

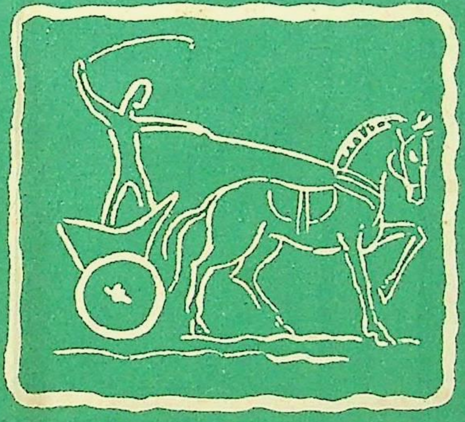
भारतीय भवनों की कहानी

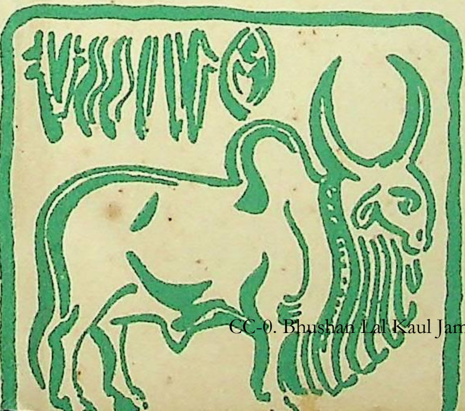
राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली






स्वदेश-परिचय-माला

भारतीय भवनों की कहानी



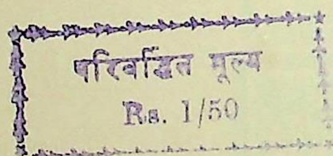
लेखक

डा० भगवतशरण उपाध्याय

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली



चौथा संस्करण, १९६६

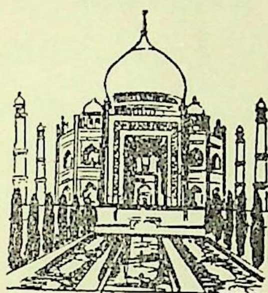




मूल्य	:	एक रुपया पचीस पैसे
प्रकाशक	:	राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
मुद्रक	:	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-६

BHARATEEYA BHAWANON KI KAHANI
by Dr. B. S. Upadhyaya
ARCHITECTURE OF INDIA (Introducing India Series)
1·25

विषय-सूची



ताजमहल

आदमी जनमता है, काम करता है, मर जाता है। आदमी खुद कमजोर है पर उसके करतब बड़े हैं, उसकी तदबीर बड़ी है। बड़े-बड़े जानवरों से—हाथी, ऊंट, घोड़े, सांड से वह बहुत छोटा, बहुत कमजोर है। पर उनसे वह कहीं चतुर है, कहीं होशियार। इसीसे वह इतने बड़े जानवरों को भी नाथकर उनसे अपना काम लेता है। और जिन शेर, चीते आदि जानवरों से वह काम नहीं ले पाता उन्हें भी वह पकड़कर सर कर लेता है और अपने बनाए चिड़ियाघरों में लाकर बन्द कर देता है। आदमी का चमत्कार यह है!

आदमी जनमते लाचार होता है, कमजोर— जो खड़ा तक नहीं हो सकता, दूसरों के हाथ पलता है। मरने पर तो वह दुनिया से गायब ही हो जाता है। जनम और मरन

के बीच वह काम करता है। वही काम रह जाता है— उसके करतब का काम, तदबीर से किया काम। खुद वह तो कमज़ोर है पर उसका काम बड़ा है, वही रह जाता है। उसके मरन के सालों-सदियों बाद तक उसकी वह कीरत चलती रहती है, जीती-जागती रहती है।

आदमी भी खुद तो कमज़ोर है, पर उसकी कीरत बड़ी है, उसका काम बड़ा है, टिकाऊ है। जो वह करता-गढ़ता-बनाता है, वह जल्दी नहीं मरता। उसे वह अपने मरने के बाद भी छोड़ जाता है जो उसकी याद दिलाता है। आदमी जीता-मरता है पर उसका काम अमर हो जाता है। उसने इतनी ऊँची, इतनी बड़ी, इतनी सुन्दर इमारतें बनाई हैं जो आज भी ज़मीन पर खड़ी हैं, इस देश में भी, बाहर के दूसरे देशों में भी। मिस्र के पिरामिडों को जो देखता है, अचरज में पड़ जाता है। डेढ़ हज़ार मील लम्बी चीन की दीवार जो देखता है, हैरत में आ जाता है। जिन्होंने उन्हें बनाया वे कमज़ोर आदमी हज़ारों-सैकड़ों साल पहले मर गए, पर उनकी ये इमारतें आज भी खड़ी हैं और दुनिया के अचरजों में गिनी जाती हैं।

इन्हींकी तरह एक अचरज अपने देश का, आगरे का ताज है, ताजमहल, मुमताजमहल का मकबरा। संसार की सारी इमारतों से सुन्दर है यह ताज। इसका-सा मधुर

कोई सपना नहीं, कोई गीत नहीं। इसका-सा कीमती कोई जवाहर नहीं। ताज पिरामिडों की तरह ऊंचा नहीं, चीनी दीवार की तरह लम्बा नहीं, पर उनसे कहीं महान् इमारत है। उसकी-सी प्यारी, उसकी-सी अनोखी, उसकी-सी नयनाभिराम दुनिया की कोई चीज़ नहीं। आदमी जाता है, ताज को देखता है और चकित हो जाता है। उसीमें खो जाता है। उसकी बनावट, उसकी सादगी, उसकी सफ़ाई, उसकी खूबसूरती का शिकार हो जाता है।

ताज सफ़ेद संगमरमर का बना है। चारों कोनों पर चार ऊंची बुर्जियां जैसे आसमान में तीर मारती हैं, जमुना की लहरियां लहराती हैं। ताज जमुना के किनारे बना है और जब जमुना सूखी नहीं रहती तो समूची इमारत की छाया उसकी लहरों में डोला करती है। यह ताज आरज़ूमन्द बानू बेगम की कब्र है। आरज़ूमन्द बानू बेगम प्रसिद्ध मुगल बादशाह शाहजहां की मलका थी, उसके चौदह बच्चों की मां। उसका दूसरा नाम मुमताजमहल था और इसी नाम पर उस मकबरे का नाम पड़ा।

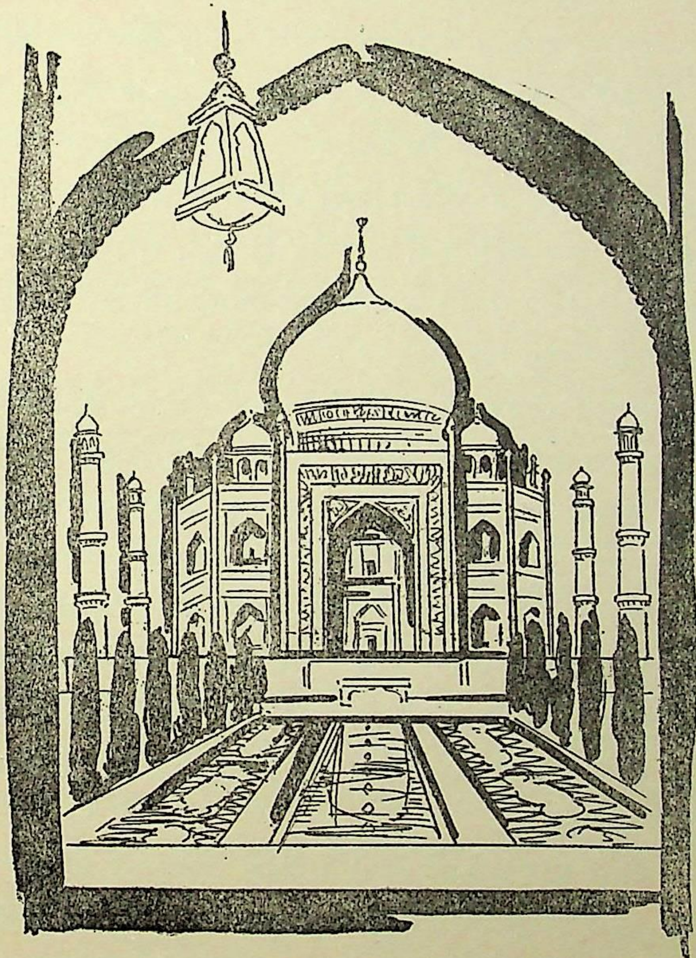
आरज़ूमन्द बानू बेगम मलका नूरजहां की भतीजी थी, उसके भाई और सम्राट् जहांगीर के वज़ीर आसफखां की बेटी। उसीके मरने पर शाहजहां ने यह उसकी कब्र बनवाई। शाहजहां के बराबर शानदार दुनिया में कोई

बादशाह नहीं हुआ। उसकी-सी शानदार और आलीशान इमारतें किसीने नहीं बनवाईं। ताज बनवाकर वह अपने महल के कमरे से सालों, मरने के समय तक उसे देखा करता। ताज उसे बहुत प्रिय था।

इमारत में नीचे उतरकर वह कमरा है, जिसमें मुमताज-महल और शाहजहां, दोनों की कब्रें हैं। उसके चारों ओर आठ कमरे बने हैं जिनमें बराबर कुरान का पाठ हुआ करता था और मधुर कंठ वाले गवैये गाया करते थे। कब्रों के चारों ओर संगमरमर की अचरज की खूबसूरत जाली दौड़ती है। दुनिया के अच्छे से अच्छे कलावन्तों ने उस जाली को दस बरस में काट-तराशकर तैयार किया था।

कब्रों के सफेद पत्थर, कभी न मुरझाने वाले ईरानी फूलों के बाग बन गए हैं! जिस खूबी के साथ मुगल कलम का जादूगर चितेरा अपने चित्रों का हाशिया लिखता था, उसी बारीकी से संगतराश ने अपनी छेनी से पत्थर पर यह फूलों का बाग उगा दिया है। और इस कब्र पर कभी मलिन न होने वाले सुन्दर अक्षरों पर लिखा है—'आरजू-मन्द बानू बेगम मुमताजमहल की मजार। मृत्यु १०४० हिजरी।'

बाहरी मेहराबी दरवाजा कारवां-सराय से घिरा है। उसके बिचले मेहराब पर संगमसा के बारीक हरफों में खुदा



ताजमहल

है—'पाक दिल बहिश्त के बाग में प्रवेश करें।'

इस दरवाज़े से ताज का समूचा शरीर दिखाई पड़ता है। सफेद, चांदी की परी-सी इमारत ज़मीन पर कुछ ऐसी हलकी-फुलकी बैठी है कि लगता है, क्षण-भर में पंख मार-कर उड़ जाएगी। इतने कम विस्तार में इतनी घनी सुघराई! कहीं कुछ कम नहीं, कहीं कुछ ज़्यादा नहीं, जैसे कुदरत ने तौलकर रख दिया है। कुछ घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता, कुछ बदला नहीं जा सकता!

सामने पत्थर की पटरियों से सजा बगीचा है, शायद दुनिया का सबसे सुन्दर बगीचा, जिसके बीच से एक पतली नहर फाटक तक चली गई है। बाग भी इमारत का ही एक हिस्सा था। इमारत की खूबसूरती इस बाग से, इसके सरों के पेड़ों से और भी बढ़ जाया करती थी। सामने एक चबूतरा ऊपर है, दूसरा नीचे। एक के फैले मैदान में फूलों का बाग कढ़ा है दूसरे पर ताज की मीनारें बनी हैं। उनके बीच ताज ऐसा लगता है जैसे चार लम्बी सहेलियों के बीच सुघड़ शहज़ादी।

दोनों ओर मस्जिदें खड़ी हैं, लाल पत्थर की मस्जिदें। ताज की इमारत एक ज़नानी नज़ाकत लिए हुए है। किसी-ने उसे 'संगमरमर के रूप में सपना' कहा है, किसीने 'फरिश्ते का ज़ाहिर अफ़साना'। कुछ भी कहा जा सकता है इस

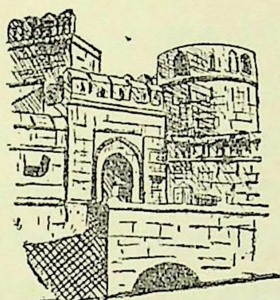
शरीफ इमारत की तारीफ में, और जो कुछ कहा जाएगा वह सारा सही होगा।

ताज बनने का क़िस्सा भी गज़ब का है। शाहजहां ने इंजीनियरों से 'माडल' मांगे। इमारत बनने के पहले उसका माडल तैयार किया जाता है न। सो उसने माडल मांगे। माडल आए—चीन-मंगोलिया से, समरकन्द-फरगना से, ईरान-खुरासान से, ईराक-आरमीनिया से, काहिरा-अलहम्रा से, वेनिस-कुस्तुन्तुनिया से। एक से एक माडल आए, खूबसूरती और इमारती रौनक के नमूने। उस्ताद ईसा का शीराज़ी नमूना शाहजहां को जंच गया। उसकी सादगी ने उसे मोह लिया।

काम शुरू हो गया। हिन्दुस्तान के कलावन्त, फारस के रंगसाज़, अरब के संगतराश, अरमीनिया के पच्चीकार, कुस्तुन्तुनिया के गुंबजकार, वेनिस के सुनार आगरे में आकर जम गए। जयपुर से संगमरमर आया, सीकरी से संगसुर्ख, पंजाब से सूर्यकान्त पत्थर। चीन से जमर्रुद और स्फटिक आए, तिब्बत से नीलमणि, अरब से मूंगा और संगमूसा। पन्ना से हीरे आए, ईरान से बिल्लौर और याकूत, शहर मुंजान से गोमेद।

कहते हैं कि इमारत में करोड़ों रुपये लगे, लाखों मजूर। तब कहीं तीस साल में ताज खड़ा हुआ। देश के कोने-कोने

से मजूर आए। काबुल से दकन तक और बंगाल से गुजरात-काठियावाड़ तक के किसानों ने उसी ताज के लिए सालों खेत जोते, व्यापारियों ने सौदागरी की। तब कहीं वह ताज तैयार हुआ। ताज इतना सुन्दर है, इतना कीमती है, बादशाह की मुहब्बत का इज़हार है। पर इन सबसे बड़ी बात उसमें यह है कि हमारे देश की तीस बरस की मेहनत, किसानों और मजूरों का पसीना इसमें लगा है। वह हमें बहुत प्रिय है।



आगरे का किला

आगरे का किला : लाल पत्थर की ७० फुट ऊंची डेढ़ मील लम्बी दौड़ती दीवारें, बुर्जियां और मीनारें, विशाल दरवाज़े। अकबर का बनवाया हुआ है यह किला। इसकी दीवारों के भीतर आंखों को सुख देने वाली प्रसिद्ध मोती मस्जिद है, अकबर और शाहजहां के महल हैं। दोनों को आगरा प्रिय था, दोनों ही ज़्यादातर वहीं रहे थे। किले का प्रधान द्वार दिल्ली दरवाज़ा है।

किले के चारों ओर एक गहरी खाई दौड़ती है जो कभी जमुना के जल से भरी रहती होगी। बाहरी दरवाज़े के भीतर हाथी पोल है, हाथी दरवाज़ा। दरवाज़े के दोनों ओर दो हाथी और उनके सवार बने थे, जिन्हें विदेशी यात्रियों ने देखा था। हाथियों के सवार चित्तौड़गढ़ की रक्षा में बलि हो जाने वाले वीर सीसोदिया जयमल और फत्ता थे। उनकी

वीरता का जादू अकबर पर इतना हावी हुआ कि उसने अपने किले के द्वार पर उनकी हाथी पर चढ़ी मूरतें बनवा दीं। बाद में औरंगज़ेब ने उन्हें उखाड़ फेंका।

भीतर मोती मस्जिद है, इमारतों में सच्चा मोती, जिसकी सादगी और सफाई मन को मोह लेती है। बिना किसी खास कटाव के इतनी मनहर इमारत कम देखने में आती है। सादे रस्ते से चलकर आदमी यकायक उसके सामने आ खड़ा होता है और उसकी खूबसूरती से चकित हो जाता है। सात मेहराबों पर तीन गुम्बज हैं; लगता है, जैसे तीन कलियां छत से ऊपर सरक आई हैं और बस फूटने ही वाली हैं। यह मस्जिद भी शाहजहां की ही कीरत है।

दाहिने बाजू दीवाने-आम है। राह उस मीना बाजार से होकर गई है जहां कभी सौदागर दुनिया के कोने-कोने से लाकर हीरे-जवाहर, किमखाब, कलाबत्तू और दूसरी कीमती चीज़ें बेचते और बादशाह और उसके अमीर खरीदते थे। सामने दीवाने-आम का सहन है जिसके पीछे खम्भों की तीन कतारें लगातार दौड़ती चली गई हैं। इमारत लाल पत्थर की बनी है।

हाल चारों ओर से खुला है। पीछे हटकर बादशाह का तख्त बना है, जिसके पीछे संगमरमर के जड़े शाही महल के कमरे थे। यहीं बैठकर बादशाह न्याय करता और राजदूतों से

मिलता था। तख्त के सामने तीन फुट ऊंची संगमरमर की एक पटिया है जिसपर खड़े होकर वज़ीर बादशाह के फरमान लिया करता था। दाहिनी ओर की जालियों से बेगमें झांककर दीवाने-आम का दरबार देखा करती थीं।

बादशाही ज़माने में त्यौहारों और उत्सवों के दिन दीवाने-आम के खंभे सुनहरी कारचोबी से ढक दिए जाते थे और ऊपर साटन की फूलदार चांदनी तन जाती थी। फर्श कीमती नरम कालीनों और गलीचों से ढक दिया जाता था। बाहर हाल से भी बड़ा शामियाना तन जाता था जिसके बांस चांदी के काम से ढंक दिए जाते थे।

दीवाने-आम के सामने जहांगीर का बनवाया हौज़ है। एक ही पत्थर को काटकर बनाया गया है, भीतर-बाहर सीढ़ियां हैं। पांच फ़ुट गहरा है यह। शायद पहले यह जहांगीरी महल में था।

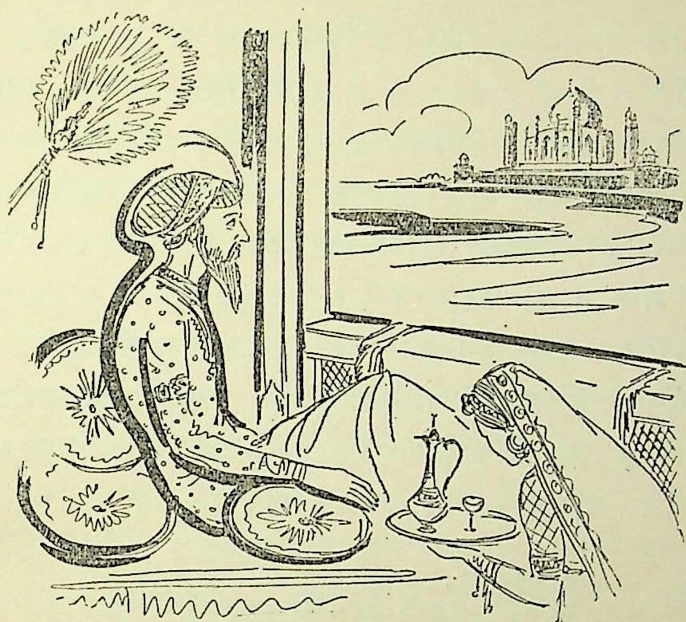
हरम की राह मीना बाज़ार से होकर जाती है। यह भीतरी मीना बाज़ार है। मीना बाज़ार की कहानी बड़ी दिलचस्प है। यहां एक बनावटी मेला लगा करता था, ज़नाना बाज़ार, जिसमें अमीरों और राजाओं की खूबसूरत रानियां और बेगमें और शाहज़ादियां ही सौदागर बनकर माल बेचती थीं और बादशाह और बेगमें खरीदती थीं। सौदे का मोल-तोल खूब होता था और बादशाह एक-एक

पैसे के लिए मोल-मोलाव करता था । बाद में पैसों की जगह अशर्फियां दे जाया करता था ।

दीवाने-आम के पीछे मच्छी भवन है । सहन इसका कभी देखने ही लायक था । इसमें संगमरमर की फूल की क्यारियां थीं, पानी की नहरें थीं, फव्वारे थे, मछलियों से भरे हौज थे । पास ही शाहजहां ने कैद में जिन्दगी के बाकी दिन काटे थे ।

दीवाने-आम के सामने ही दीवाने-खास है । कटाव-जड़ाव का काम गजब की खूबी से हुआ है । पूरब की कारीगरी का अचरज का नमूना । मच्छी भवन के सामने जहांगीर का तख्त है, जहां से वह बाहर के मैदान में हाथियों की लड़ाई देखा करता था । दीवाने-खास के ठीक सामने जहांगीर के नहाने के हमाम हैं । उनका पानी बाहर दीवार के बाहर से ७० फुट नीचे से आता था । लार्ड हेस्टिंग्स ने उनमें से सबसे सुन्दर हमाम उखड़वा कर इंग्लैंड के युवराज को भेंट कर दिया ।

यहीं वह मुसम्मन बुर्ज है, जूही-महल, जिसमें बारी-बारी से नूरमहल (नूरजहां) और मुमताजमहल रह चुकी थीं । उसीमें ताजमहल की इमारत आखिरी दम तक देखता शाहजहां मरा था । मुसम्मन बुर्ज के सहन में एक ओर एक छोटा-सा फव्वारा फर्श के नीचे गहरा काटकर बना है ।



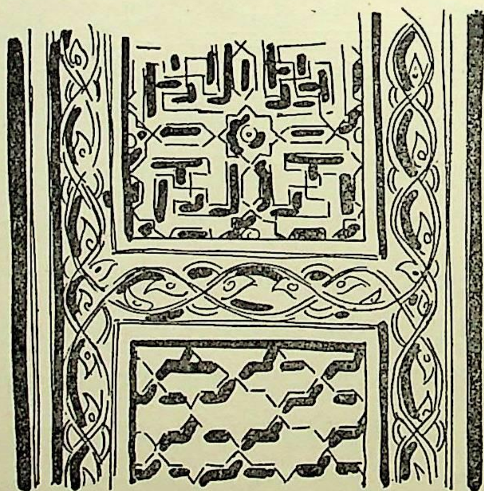
शाहजहां आखिरी दम तक ताजमहल देखता मरा था।

दूसरी ओर संगमूसा की पचीसी बनी हुई है।

पास ही खास महल है, बेगमों का जनाना, अंगूरी बाग का पूरबी हिस्सा। शाम को, जब सूरज की चमकती धूप नरम पड़ जाती है तब इसे देखो तो महल इतना सुन्दर लगता है कि देखते ही बनता है। शाम की डूबती लाली सुनहरी छत को आग की लपटों के रंग से रंग देती है, संगमरमर को गुलाबी बना देती है। और शमा जलने पर जो सुनहरी, बैंजनी, लाल रंगों-रतनोंवाली चांदनी छत की रौनक

बन आती थी वह दुनिया के किसी महल को कभी नसीब न हुई। कभी खास महल के ताकों में तैमूर से लेकर पिछले काल के मुगल बादशाहों तक की तस्वीरें लगी हुई थीं।

खास महल के दक्खिन से एक जीना नीचे तहखाने के कमरों को जाता है। वहां बादशाह और बेगमें आगरे के दिन की गर्मी से भागकर सरन लेते थे। एक कोने में बावड़ी है, चारों ओर कमरे बने हैं जो बावड़ी के कारण ठंडे रहते थे। आसपास वे कमरे हैं जो कभी गुमराह गुलामों और अमीरों के लिए जेल का काम करते थे और जहां से वे प्राणदण्ड के लिए बधिक के पास ले जाए जाते थे।

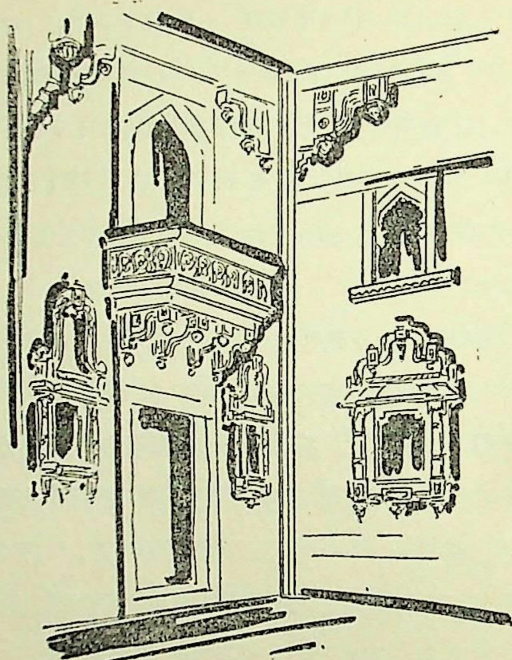


ज्यामिति के आकारों-सी फूल की क्यारियां

खास महल के सामने अंगूरी बाग है, तीन ओर से मेहराबी दौरान से घिरा, शायद अकबर का बनवाया। मुगल बगीचा का खासा नमूना था यह बाग, जिसमें बीच के फव्वारे से ज्यामिति के आकारों-सी फूल की क्यारियां दौड़ती थीं। कभी इसमें अंगूर की बेलें दौड़ती थीं जिनसे इसका अंगूरी बाग नाम था।

अंगूरी बाग के उत्तर शीश महल है, जनाना हम्माम, गुसलखाना। इस बाग के दूसरी ओर प्रसिद्ध जहांगीरी महल है। शाहजहां की बनाई इमारतों में गजब का एक लोच है, एक अजीब मस्ती, शरमाई नज़ाकत, एक ज़नानापन। अकबर की इमारतों में एक अनोखा मरदानापन है; और यह जहांगीरी महल उसी अकबर का बनवाया हुआ है गो उसका नाम जहांगीर से जुड़ा है। इसकी कला सीकरी की है, पुरानी हिन्दू इमारतों की ताकत और ठोसपन लिए हुए, शाहजहां की ईरानी-अरबी ज़नानियत से भिन्न। महल की नदी की ओर की दीवारों पर बड़े खूबसूरत चित्र बने हुए थे जो अब धुंधले पड़ गए हैं।

जहांगीर महल के भीतर गजब का खूबसूरत आंगन है। मुगल कला का दिलकश नमूना। इसकी बनावटें तो लाजवाब हैं ही। इसके खम्भों, मेहराबों और अनगिनत टोड़ों से अंधेरे-उजाले का एक लुका-छिपी जो वहां होती रहती है उससे

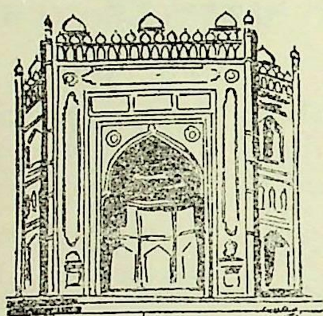


जोधबाई का महल

उसकी सुघराई का असर दुगना हो जाता है। उत्तर की ओर जहांगीर की हिन्दू रानी जोधपुर की जोधबाई का महल है, हिन्दू ढंग से बना। उसीसे लगा पच्छिम ओर का कमरा उसका मन्दिर था।

यह आगरे का किला है, अटूट यादगारों से भरा। यादगारें जो दर्दभरी हैं, शानोशौकत भरी हैं। अकबर, जहांगीर, शाहजहां की बनाई उसमें अनेक इमारतें हैं, उसकी अपनी-

अपनी खूबियां, अपनी-अपनी सुघराई है। तीनों अधिकतर इन्हीं महलों में रहे थे। अकबर तो फतहपुर सीकरी के महल बनवाकर भी यहीं लौट आया था। हां, औरंगज़ेब को ज़रूर यह किला इतना नहीं रुचा और वह दिल्ली में ही अधिकतर रहता था।



फतहपुर सीकरी

फतहपुर सीकरी : जैसे शाप से उजड़ा नगर। नगर कि जैसे इन्दर लोक। पर सूना, आसमान की तरह सूना, जहां एक परिन्दा तक पर नहीं मारता। किसने सोचा था कि जहां कभी बाबर की तोपें गरजी थीं, जहां सांगा के रिसाले उन तोपों की मार पर लगातार टूटते गए थे, जहां अकबर ने करोड़ों खर्च कर इतनी लगन से अनूठे महलों का अनूठा नगर खड़ा किया था, वह नगर एक दिन बनाने वाले की जिन्दगी में ही वीरान हो जाएगा, अशुभ की तरह तज दिया जाएगा।

अकबर के बेटा न था। उसने सीकरी गांव के सलीमशाह चिश्ती की सरन ली और राजपूत रानी से सलीम पैदा हुआ जो बाद में जहांगीर के नाम से बादशाह हुआ। उसी सीकरी में पहाड़ी पठार पर सोलह साल तक लगातार पत्थर कटते

रहे, छेनियां खटकतीं रहीं और छः मील के गिर्द महल और बाग खड़े हो गए, जहां कभी शेर और चीते दहाड़ते थे। बादशाह वहां सत्रह साल मुश्किल से रहा, पर पानी का वहां इतना अभाव हो गया कि उसे मजबूर होकर सीकरी छोड़ देनी पड़ी और वह आगरा लौट गया। सीकरी के महल वीरान हो गए, सूने।

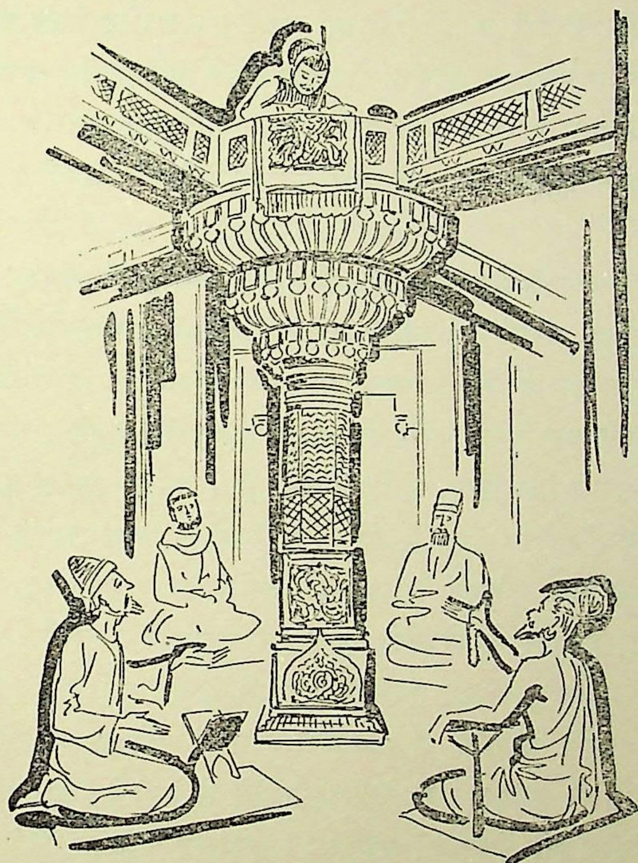
अब वहां की इमारतों के बारे में दो बातें कहेंगे। दीवाने-आम के चौक से निकलते ही दफ्तरखाना मिलता है। उसके सामने से महले-खास जाने का रास्ता है। महले-खास अकबर का महल था। बाईं ओर की दोमंजिली इमारत अकबर के निजी कमरों की थी। नीचे के पहले कमरे में किताबें आदि रखने के लिए जगहें बनी हैं। उसमें दीवारों पर कुछ बड़े सुन्दर फूलों के चित्र भी बने हैं। पीछे के कमरे में शायद बादशाह का तख्त रहता था। उसके एक दरवाज़े से दफ्तरखाना पहुंचते थे, दूसरे से जोधबाई के महल।

ख्वाबगाह या बादशाह का सोने का कमरा ऊपर छत पर था। पहले इसकी समूची दीवारें तस्वीरों से भरी थीं, पर अब थोड़ी ही तस्वीरें बच रही हैं। इनकी शैली ईरानी है और अनेक बार इनपर चीनी कलम का असर दीख पड़ता है। दुनिया जानती है कि अकबर को चित्रों और चित्रकारी से बड़ा प्रेम था। कठमुल्लों ने उसे इसी कारण काफिर

कहकर बदनाम करना चाहा, किया भी पर उसने अपनी टेव न छोड़ी, और उस कला पर उसने अपना अनुराग जारी रखा।

महले-खास के चौक के उत्तर-पूरबी कोने में एक निहायत खूबसूरत इमारत है; तुर्की सुल्तान का महल, सीकरी के महलों में रतन। कमरा तो इसमें बस एक ही है, बराम्दों से घिरा, पर भीतर-बाहर के कटाव के काम और अलंकरण मुगल-कला में अपूर्व हैं। उभरे बेल-बूटे, जानवर वगैरह, लगता है, सहसा जी उठे हैं। एक ढका हुआ रास्ता इसे खाबगाह से मिलाता है। पास ही हकीम-हम्माम हैं जिनके जोड़ के हम्माम हिन्दुस्तान में दूसरे नहीं। महल के उत्तरी भाग में पचीसी बनी हुई है, जिसपर गोट की जगह गुलाम बांदियां बिठाकर बादशाह और बेगमें खेला करते थे।

और उत्तर खाबगाह के ठीक सामने एक वर्गाकार अकेली इमारत है। यह दीवाने-खास है। बाहर से यह दोमंज़िली लगती है पर है यह एकमंज़िली। उसके खम्भे और गैलरी से दोमंज़िल का धोखा होता है। हाल के बीचोंबीच एक विशाल शालीन खम्भा खड़ा है। यह नीचे से ऊपर तक कटाव के काम से सजा है और इसका मस्तक बीसियों टोडों का बना है। इसके ऊपर चारों ओर से चार रेलिंगदार



खम्भे के मस्तक पर अकबर का तख्त

राहें आकर मिलती हैं जिनकी सन्धि को यह खम्भा अपने सिर पर उठाए हुए है। ऐसी कोई चीज दुनिया में कहीं नहीं है। इसी खम्भे के मस्तक पर अकबर का तख्त रहता

था और गैलरी के चारों कोनों पर चार वज़ीर बैठते थे। नीचे अमीर-उमरा और दूसरे आए हुए लोग बैठते थे। शायद यहीं बादशाह सभी धर्मों के पण्डितों की बहसें सुना करता था और यहीं उसने अपने नए मज़हब दीने-इलाही को जन्म दिया।

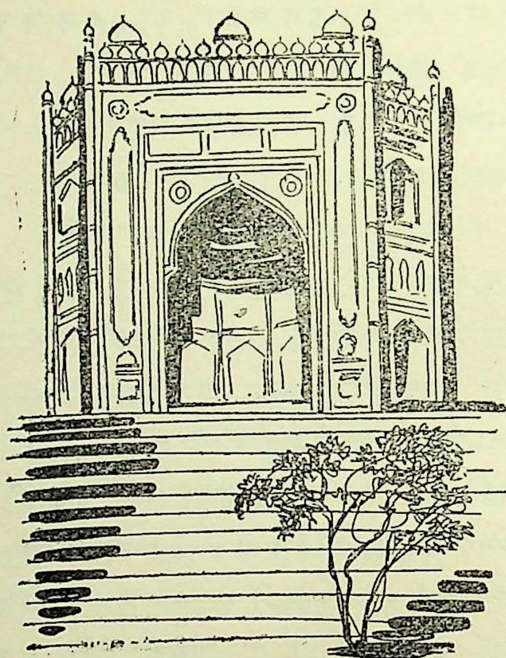
दीवाने-आम का पच्छिमी भाग खाबगाह के पूरबी भाग से मिला हुआ है। हाल के बाहर बराम्दे में दो जालियों के बीच बादशाह का तख्त है। इसके सामने ही एक पांच मंज़िली इमारत है जिसे पांचमहल कहते हैं। महले-खास से वहां जाने के लिए सीढ़ियां बनी हैं। इसके अनेक खण्ड जालियों और खंभों से बंटे हुए हैं जो शायद शाहज़ादों-शाहजादियों के रहने के लिए थे। इसीके ऊपर चढ़कर शायद बादशाह और बेगमें नीचे के नज़ारे देखते थे। इसमें हिन्दू, जैन, मुस्लिम, तीनों तरीकों के काम हैं।

महल के चौक के पच्छिमी भाग में मरियम की कोठी दोमंज़िली, बड़ी खूबसूरत, हिन्दू तरीके से बनी है। यह कोठी जहांगीर की हिन्दू मां की थी। बरामदे के एक टोडे पर रामावतार का दृश्य खुदा है। समूची कोठी पहले चित्रों से भरी थी और सुनहरे तारों आदि का इतना इस्तेमाल उसमें हुआ था कि उसे 'सुनहरा मकान' ही कहने लग गए थे। चित्र अधिकतर ईरानी ढंग के, फिरदौसी के 'शाहनामा'

के आधार पर बने हैं । इस मकान का यह नाम ज़रूर है पर ज़्यादा संभव यह है कि इसमें कोई ईरानी रानी रहती हो और जोधबाई (मरियम ज़ामानी) अपने नाम के जोधबाई-महल में रहती रही हों । इस महल में एक हिन्दू मन्दिर भी है । ऊपर की जाली हवा-महल कहलाती है ।

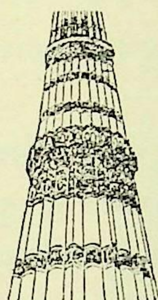
जोधबाई-महल से एक ढकी राह से जुड़ी हिन्दू ढंग से बनी एक सुन्दर दोमंज़िली इमारत है, बीरबल या बीरबल की बेटी का महल । आसपास की इमारतों में यह सबसे अधिक सजी है, जोधबाई-महल को छोड़ बाकी सबसे बड़ी भी है । नहीं कहा जा सकता कहां तक इसे बीरबल की बेटी का महल कहना उचित है । वैसे राजा बीरबल और अकबर की दोस्ती तो जहान में मशहूर है । कुछ अजब नहीं जो वह वहां रहता रहा हो या उसकी बेटी पर सम्राट् अकबर की कृपा रही हो और उसीको वह महल दे दिया गया हो ।

सीकरी की जामा मस्जिद भी वहां की सबसे सुन्दर इमारतों में से है । इसकी गणना संसार की मस्जिदों में है । कहते हैं कि यह मक्का की एक मस्जिद की नकल में बनी थी, यद्यपि इसकी कई चीज़ें हिन्दू शैली में बनी हैं । इसके एक दरवाज़े से अकबर मस्जिद में प्रवेश करता था, दूसरे बुलन्द दरवाज़े से दूसरे लोग । यह बुलन्द दरवाज़ा दकन जीतने



सीकरी की जामा मस्जिद

की यादगार में बना था। यह १७६ फुट ऊंचा है, शायद संसार के दरवाज़ों में सबसे ऊंचा। इसकी चोटी से पचीस मील दूर ताज और भरतपुर का किला दिखाई पड़ जाता है। इसे बनाने के चार-पांच साल बाद ही अकबर मर गया था।



कुतुबमीनार

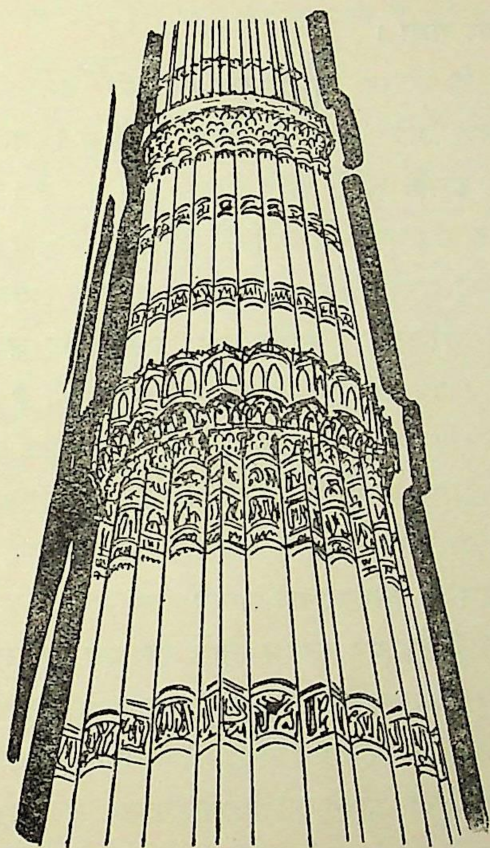
आगरा और दिल्ली का वैभव ज्यादातर मुगलों का है। वैसे तो दूसरे राजाओं और बादशाहों ने भी वहां अपने भवन और महल खड़े किए, मुगलों के ही अधिकतर बच रहे हैं, और सुन्दर और शालीन वही हैं भी। दिल्ली सात-आठ बार गिरी-बनी है और उसमें एक से एक बढ़कर महल समय-समय पर बनते रहे हैं, पर हम यहां दूसरी इमारतों का ज़िक्र न कर केवल कुतुबमीनार और शाहजहां की बनवाई जामा मस्जिद और किले का ही करेंगे।

कुतुब की लाट इस देश की सभी इमारतों से ऊंची है, विदेशों में भी इतनी ऊंची इमारतें कम हैं। इसकी कुल ऊंचाई २३८ फुट है। मंज़िलें इसमें पांच हैं, पहली ९५ फुट ऊंची है, दूसरी ५१ फुट, तीसरी ४१ फुट, चौथी २५ फुट और पांचवीं २२ फुट ऊंची है। लाट अत्यन्त सुन्दर

है और लगता है जैसे जमीन से यकायक निकलकर आसमान चीरती चली गई है। भारत के गौरव की इमारतों में इस कुतुब की लाट का भी स्थान है। इसकी बनावट भी सुन्दर और दर्शनीय है।

इसके बनाने में तीन-तीन बादशाहों का हाथ लगा है। कुतुबुद्दीन ऐबक का, अल्तमश और फिरोजशाह तुगलक का। शायद कुतुबुद्दीन ने इसे अपनी किसी विजय की यादगार में खड़ा करने का मन्सूबा बांधा था। पर पहली मंजिल बनने के बाद ही वह इस दुनिया से चल बसा। अगली तीन मंजिलें उसकी, गुलाम वंश के बादशाह अल्तमश ने तैयार कराईं। पांचवीं मंजिल लाट के आरंभ होने के करीब डेढ़ सौ साल बाद बनी। उसे फीरोजशाह तुगलक ने १३६८ ई० में बनवाया। उस साल बिजली गिर जाने से लाट का ऊपरी हिस्सा कुछ टूट गया था, सो उसकी मरम्मत कराते वक्त फीरोज ने चौथी मंजिल को कुछ छोटा कर एक नई पांचवीं मंजिल भी जोड़ दी। उसने पत्थर भी दूसरे इस्तेमाल किए। पहले की मंजिलें लाल पत्थर की बनी थीं। उसने नई मंजिल में सफेद पत्थर लगवाए।

कुतुबमीनार की मरम्मत १५०३ ई० में फिर हुई जो सिकन्दर शाह लोदी ने कराई। १८०३ में जो भूचाल आया उससे फीरोजशाह की बनवाई ऊपर की छतरी टूट



कुतुबमीनार

गई। पचीस बरस बाद अंग्रेज सरकार ने भी इसकी मरम्मत कराई और ऊपर एक नई छतरी चढ़ा दी, पर लाट से मेल न खाने के कारण १८४८ ई० में उस छतरी को बिल्कुल

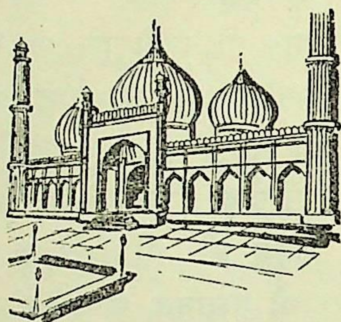
उतार दिया गया।

लाट के भीतर घुमावदार सीढ़ियां बनी हैं, जिनसे ऊपर उसके सिरे तक लोग चढ़ जाते हैं। चार छज्जे चक्करदार इसके चारों ओर दौड़ते चले गए हैं। इन छज्जों की बनावट बिल्कुल हिन्दू शैली की है। इसके टोडे और घुड़ियां हिन्दू इमारतों के तरीके पर बनी हैं। ऐसे ही सबसे निचली मंजिल पर चारों ओर घंटों और जंजीरों की बनावट है। यह मंजिल सितारे की शक्ल की है। इसकी बाहर चिनाई में एक के बाद एक गोलाकार और एक तिकोना तरीका काम में लाया गया है। दूसरी मंज़िल पर आधे चक्र बनते चले गए हैं, तीसरी पर त्रिकोण, बाकी दो मंजिलें बेलन के आकार की लम्बी गोल हैं।

कहते हैं कि यह स्तम्भ पहले राजपूत राजाओं ने शुरू किया था। फिर अपना राज चले जाने पर वह भी बनते-बनते रह गया। पर यह विश्वास शायद लोगों को नीचे की मंजिल की हिन्दू शैली को देखकर बना है। पर उसका कारण यह है कि पुरानी सारी मुस्लिम इमारतें दिल्ली, बंगाल, गुजरात और दकन में हिन्दू-मुस्लिम दोनों शैलियों के मिश्रण से बनी हैं। उन्हें हिन्दू कलावन्तों ने बनाया है और जो बनाया है वह इस्लाम की सेवा के लिए है, चाहे वह मस्जिद है चाहे मकबरा। बनाया इस लाट को मुसल-

मान बादशाहों ने ही। पास की मस्जिद से भी इस मिली-जुली शैली का सबूत मिल जाता है।

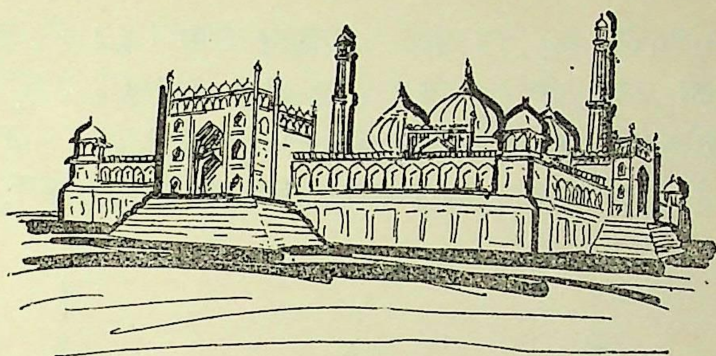
कुतुबमीनार दिल्ली के पास ही पृथ्वीराज की दिल्ली में—मेहरौली गांव के निकट बनी है। वहीं चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का बनवाया लोहे का स्तम्भ भी आज करीब डेढ़ हजार बरसों से आंधी-पानी में खड़ा है, उसकी विजयों का लेख अपने तन पर धारे। कुतुब की मीनार कुछ अजब नहीं, जो दिल्ली में मुसलमानी सल्तनत कायम होने की यादगार में बनी हो। है बड़ी दर्शनीय मीनार यह, दुनिया की मीनारों में नायाब, हिन्दू-मुस्लिम कला का एकजाई नमूना!



जामा मस्जिद

जामा मस्जिद : यह मस्जिद संसार की सुन्दरतम मस्जिदों में गिनी जाती है। शाहजहां गज़ब का कला-पारखी और महान् निर्माता था। उसकी बनाई इमारतों का जोड़ दुनिया में नहीं है। उसने अपनी इमारतें तभी बनवाईं, जब फ्रांस के अपने बसाए नगर वर्साई में चौदहवां लुई अपने महल खड़े कर रहा था। दोनों की इमारतें अपनी-अपनी जगह पर असाधारण हैं, पर दोनों में मुकाबला कैसा? ताज की जोड़ की चीज़ इस ज़मीन पर दूसरी कहां है? वह तो दुनिया के सात अचरजों में गिना जाता है।

जामा मस्जिद भी शाहजहां की ही बनाई हुई है, जो उसीके बनवाए दिल्ली के लाल किले के पास ही आलीशान खड़ी है। वह १६५० ई० में बननी शुरू हुई और ६ साल में बनकर तैयार हो गई। ५००० संगतराशों, मज़दूरों

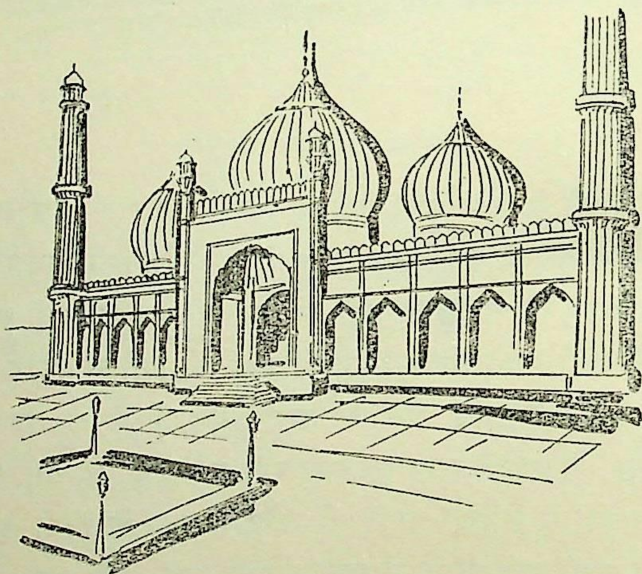


दिल्ली की जामा मस्जिद

और राजों ने उसे बनाया। बनाने में करीब दस लाख रुपये खर्च हुए थे, फिर उस काल के रुपये जिनकी क्रयशक्ति आज के रुपये से कुछ नहीं तो बीस गुना अधिक थी। इसकी ज़मीन को भोजला पहाड़ी कहते हैं। नीची पठार को बराबर कर मस्जिद उस पर बनाई गई, किले के दिल्ली दरवाज़े के सामने ज़रा हटकर जहां दरवाज़े के बाहर के हाथीखाने से सड़क जाती थी और सड़क के दोनों ओर दुकानें चली गई थीं, अब वहां दुकानें नहीं रहीं, वहां एक लम्बा-चौड़ा मैदान है।

समूची मस्जिद लाल पत्थर की बनी है, गुम्बज सफेद पत्थर के बने हैं। बीच-बीच में कंठ से कलश तक जगह-जगह काले पत्थर की पटियां जड़ दी गई हैं। मस्जिद का सहन ४०० फुट का वर्गाकार है। उसके बीचोंबीच एक

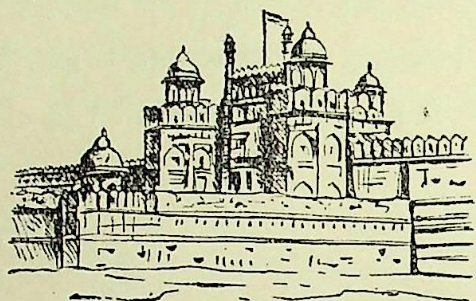
संगमरमर का हौज़ बना है, हौज़ में फव्वारा है। पच्छिम की तरफ नमाज पढ़ने के लिए बड़ा दालान है। बाकी तीन तरफ भी लम्बे दालान हैं। हर दालान में एक दरवाज़ा है; पूरबी दालान का दरवाज़ा बहुत बड़ा है, बहुत ऊंचा।



जामा मस्जिद का भीतरी भाग

मस्जिद पर तीन बड़े सुन्दर गुम्बज बने हैं। बीच का बड़ा है, दायें-बायें के कुछ छोटे हैं। दोनों सिरों पर दो पतली मीनारें हैं, आठ पहल, १२० फुट ऊंची। इनपर चढ़ने के

लिए भीतर से सीढ़ियां बनी हैं । पूरबी दालान के सिरों पर बड़ी-बड़ी छतरियां हैं, दरवाज़ों के ऊपर सफेद पत्थर की छोटी-छोटी बुर्जियां हैं। त्यौहारों पर इस मस्जिद में हज़ारों की भीड़ हो जाया करती है, लाख-लाख तक की ।



लाल किला

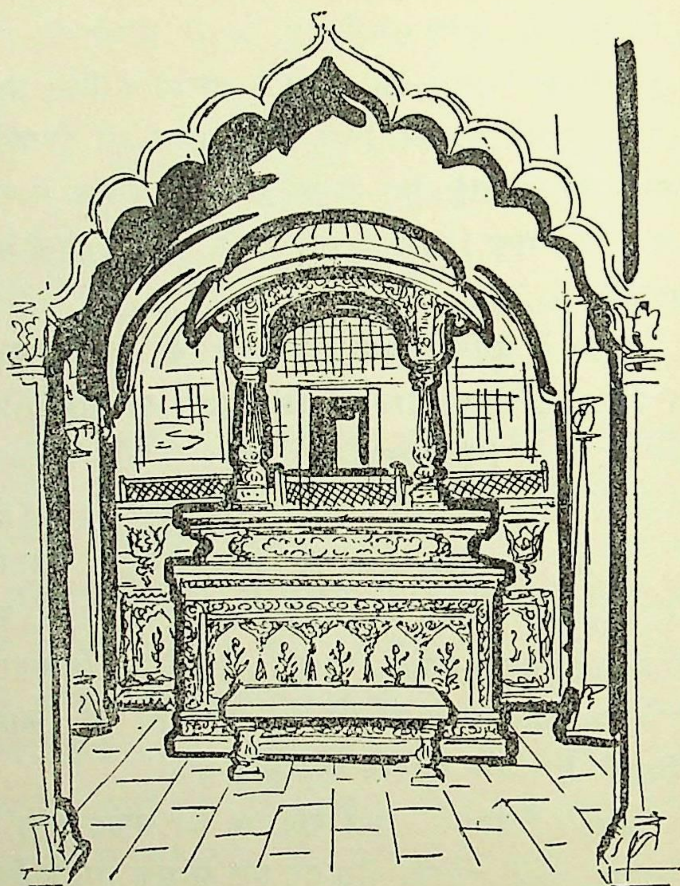
लाल किला: लाल किला भी शाहजहां का ही बनवाया हुआ है। उसने एक बार आगरा छोड़कर दिल्ली को अपनी राजधानी बनाने का निश्चय किया था। उसके लिए महलों की ज़रूरत थी और ऐसे महलों की जिनमें शाहजहां का-सा कला-पसन्द रह सके। और इन महलों की रक्षा के लिए किले की ज़रूरत थी और शाहजहां ने १६३८ ई० में लाल पत्थरों का अपना वह दिल्ली का मशहूर किला बनवाना शुरू किया। नौ साल बाद, उसके गद्दीनशीन होने के बीसवें बरस यह किला बनकर खड़ा हो गया। बारह-बारह गज़ की दीवारें अपने कलश-कंगूरों के साथ, नाज़ुक बुर्जियों के साथ तैयार हो गईं। दो प्रधान द्वार—दिल्ली दरवाज़ा और लाहौरी दरवाज़ा खुल गए, तिमंज़िले द्वार, खूबसूरत बुर्जियों से लैस।

महल जमुना की तरफ़ वाली दीवार के सहारे बने,

जिससे नदी का दृश्य सामने रहे, जिससे आगरे की गरमी से कुछ नजात मिले। इस गरमी से बचाव के लिए महलों के नीचे तहखाने भी बना लिए गए। सामने की दीवारों के किनारे-किनारे खाई दौड़ा दी गई और उसे जमुना के पानी से भर दिया गया। ऊपर उठाऊ लकड़ी का पुल डाल दिया गया।

फाटक से घुसने के बाद लाल पत्थर का ऊंचा दरवाजा है। उसके ऊपर का दालान नौबतखाना था जहां नौबत बजा करती थी। इस नक्कारखाने के पीछे चौक है जिसमें विशाल दीवाने-आम आज भी शानदारी से खड़ा है। तीन दरों का बड़ा दालान, लाल खंभों पर टिका, पानदार मेहराबों से सजा। कभी उनपर सुनहरी नक्काशी थी। खंभे, फर्श और दीवारें सुनहरी-रूपहली लटकनों, बेशकीमती किमखाबों और नरम गलीचों-कालीनों से ढक दी जाती थीं। बाहर शामियाने में अमीर-उमराव खड़े होते थे।

पिछली दीवार से लगा बादशाह का सफेद तख्त है, तोरणदार, ऊंचा। उसकी पीठ पर एक से एक सुन्दर बेल-बूटे कटे हुए हैं। तख्त के सामने के हिस्से में वजीर आदि के खड़े होने-बैठने का इन्तज़ाम आगरे के किले का-सा ही था। इसी दीवाने-आम में संसार प्रसिद्ध शाहजहां का तख्तेताऊस रहता था जिसे नादिरशाह ईरान उठा ले गया।

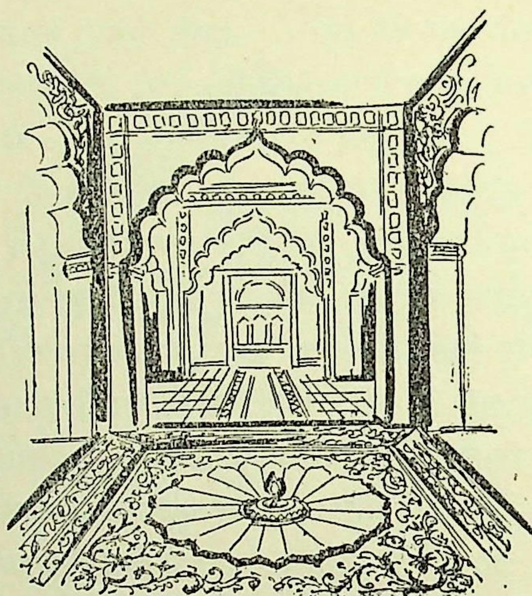


बादशाह का सफेद तख्त

दीवाने-खास : दीवाने-आम के पीछे दीवाने-खास का सहन है और उसके दायें-बायें शाही महल है। इस सहन को 'जल्वाखाना' कहते थे। दीवाने-खास की समूची इमारत

सुन्दर संगमरमर की बनी है। इसके खम्भों के ऊपर बेल-बूटों से सजी सुनहरी पत्तर चढ़ी हुई थी और उनपर टिकी छत चांदी की चद्दरों से ढकी थी। १७६० ई० में मरहठा सरदार सदाशिव राव भाऊ ने उस चांदी की छत को उतरवाकर उससे सत्रह लाख सिक्के ढलवा लिए थे। दीवाने-खास की शक्ल बारादरी की है। इनमें से एक दरवाज़े के मेहराब पर लिखा है—'इस धरती पर अगर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।' है सच ही धरती पर यह स्वर्ग।

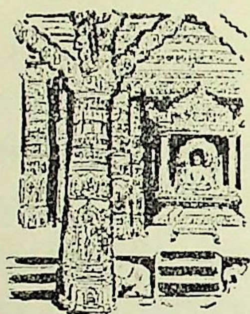
दीवाने-खास के दोनों तरफ नदी की ओर शाही महल बने हैं। दक्खिन की ओर खाबगाह, मुसम्मन बुर्ज, बैठक और रंगमहल, शाहबुर्ज आदि हैं। रंगमहल दीवाने-आम के ठीक पीछे सबसे बड़ा है। सामने कभी बाग था जिसमें फव्वारे छूटते रहते थे, नहरें बहती थीं। रंगमहल भी सफेद पत्थर का बना है, बीच में सफेद पत्थर का ही कमल-सा कटा जलाशय है। यहां से पानी बहकर हयात बख्श बाग में झरने के रूप में गिरता था। इस महल की छत भी चांदी की थी, जिसे उतरवाकर फर्रुखसियर ने ताम्बे की लगवा दी, फिर वह भी जब अकबर सानी को न रुची तो उसने उसे भी उतरवाकर उसकी जगह लकड़ी की लगवा दी। रंग-महल बेगमों का जनानखाना था, इससे उसके दोनों तरफ परदे के लिए जालियां बनी थीं; नीचे तहखाने थे।



सफेद पत्थर का कमल-सा कटा जलाशय

किले की दूसरी इमारतों में प्रधान हम्माम, मोती मस्जिद, सावन-भादों और हयात बख्श बाग हैं। हम्माम में कई कमरे हैं। इनका फर्श गजब की पच्चीकारी से कालीन का-सा कर दिया गया है। कमरों के बीच-बीच में नहाने के लिए कुंड बने हुए हैं। उनमें कभी अनेक रतन जड़े थे और सैकड़ों फव्वारे छूटते रहते थे। बीच के कमरे में एक नहर बहती थी जिसके नीचे ऐसा कटाव था कि पानी बहने पर लगता था कि नीचे मछलियां तैर रही हैं।

मोती मस्जिद अत्यन्त स्वच्छ-सुन्दर छोटी-सी मस्जिद है, चांदी-चूने से पुती, बिलकुल मोती-सी सफेद। पास के मोती महल के पच्छिम ५०० फुट वर्गाकार हयात बाग था। बाहर नहर बहती थी। भीतर के संगमरमर के मंडप के बीच जो चौकोर कुण्ड बना है, उसमें सुराख कुछ ऐसे बने हैं कि जब नहर का पानी उनसे झरता था तब सावन की झड़ी का दृश्य सामने आ जाता था। इसीसे उसका नाम ही 'सावन' पड़ गया था। उधर दूसरी ओर की बनावट से पानी कुछ ज्यादा गिरता है और भादों के बादल जैसे बरसने लगते हैं। सावन-भादों के बीच लाल पत्थर का एक जलाशय है, जिसके आर-पार नहर बहती थी। नहर की राह में थोड़ी-थोड़ी दूर पर फव्वारे बने हुए हैं। जलाशय के बीच बहादुर शाह का बनवाया जफर-महल है।



दिलवाड़ा

दिलवाड़ा : पच्छिमी राजस्थान में दिल्ली से गुजरात जाने वाली राह पर अजमेर और अहमदाबाद के बीच आबू का पहाड़ है। है तो वह अरावली पहाड़ों का ही एक भाग पर सिलसिले से अलग अकेला पहाड़ ४,५०० फुट ऊंचा उठता चला गया है। कहते हैं कि चौहान आदि चार राजपूत कुलों की उत्पत्ति वहीं हुई। कुछ काल तक वह अन्हिलवाड़ के चालुक्यों के हाथ में रहा, फिर बघेलों और चौहानों के। चौहानों ने वहीं से दिल्ली जीती थी। सदियों वह मेवाड़ के राणाओं के राज में रहा था, फिर मुगलों ने उसपर अधिकार कर लिया था।

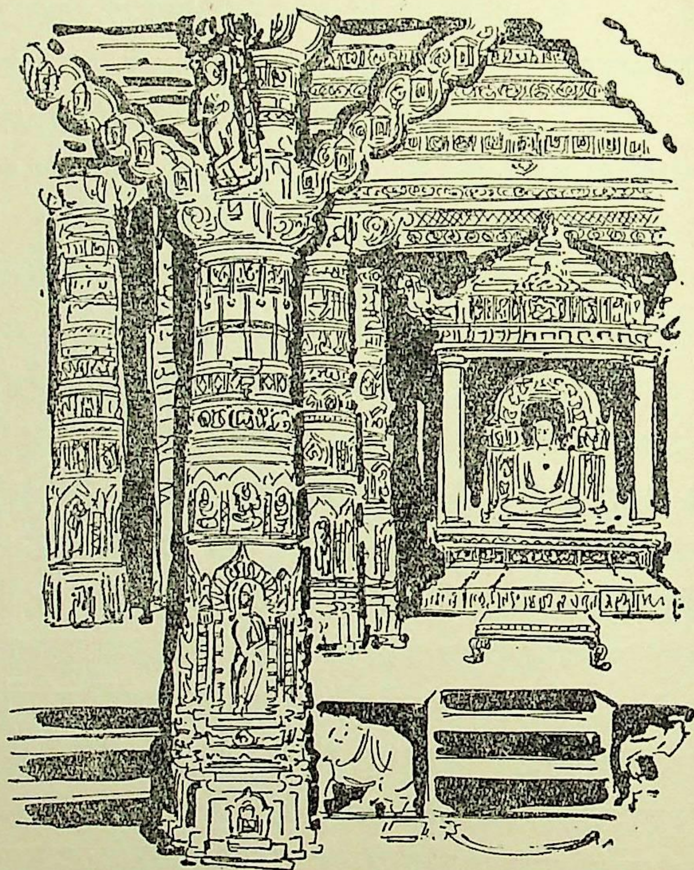
उसी आबू पर दिलवाड़ा में जैनों के दो महान् मन्दिर संगमरमर के बने हुए हैं। आज से कोई हजार साल पहले

ग्यारहवीं और बारहवीं सदी में वे बनकर तैयार हुए थे। जहां

तक पत्थर में बारीक कटाव और डिज़ाइनों की अनन्तता और बारीकी का सवाल है उनका-सा मन्दिर इस देश में दूसरा नहीं है। मन्दिर के भीतर दीवारों पर, छतों में, खंभों पर तनिक जगह नहीं है, जहां पत्थर को काट-कोरकर कोई अलंकार, कोई डिज़ाइन न बनी हो।

डिज़ाइनों-आकृतियों का तो यह हाल है कि आंखें देखती थक जाती हैं पर उनका सिलसिला नहीं रुकता, उनके दृश्य नहीं चुकते। जैसे शाम के आसमान में तारे एक के बाद एक देखने वाले की नजर में उठते चले आते हैं वैसे ही आंख डालते ही ये डिज़ाइनें एक के बाद एक अनंत नजरों में सरकती चली आती हैं। वैसे तो ज्यादातर जैन मन्दिरों की खूबसूरती उनके काम की महीनी और बारीकी में है, इन मन्दिरों का काम तो ऐसा है कि इनकी तुलना ही किसी और मन्दिर से नहीं की जा सकती। इनकी मूरतों के नाक-नक्श तीखे हैं जैसे धातु के बने हुए हों। इन विशाल अचरज के मन्दिरों को किसने बनाया ?

दसवीं सदी के बीच आबू पर चन्द्रावती के चालुक्य राजाओं का राज था। इन राजाओं का मूल परिवार गुजरात में अन्हिलवाड़ का था। चन्द्रावती के खंडहर नीचे दक्खिन की ओर मैदान में आज भी देखे जा सकते हैं गो उनके पत्थर रेलवे के निर्माण के लिए बड़ी बेमुरव्वती से



दिलवाड़ा का मन्दिर

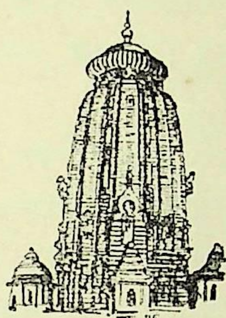
नींव तक उखाड़ लिए गए हैं। वहीं के राजा भीमदेव प्रथम के समय दिलवाड़ा का पहला प्रसिद्ध मन्दिर बना था। आबू पर उस समय स्थानीय राजा धन्दू का राज

था। वह भीमदेव का सामन्त था। उसके ऊपर राजद्रोह का शक करने के कारण भीमदेव ने अपने मन्त्री विमल को आबू का गवर्नर बना दिया था। उसी विमल ने इस पहले मन्दिर को बनाने का खर्च दिया और यह मन्दिर भी उसीके नाम से प्रसिद्ध हुआ। १०३१ ई० में इसमें पहली बार पूजा हुई।

भीमदेव प्रथम का तीसरा वारिस कुमारपाल स्वयं जैन हो गया। उसीके मन्त्री चाहुदेव ने अगले राजा भीमदेव द्वितीय से तेजपाल और वस्तुपाल का परिचय कराया। तेजपाल और वस्तुपाल दोनों भाई थे जो भीमदेव के मन्त्री बन गए और उन्होंने १२३० ई० से १२३६ ई० तक सात साल में अनन्त धन लगाकर दिलवाड़ा का दूसरा महान् मन्दिर बनवाया। दोनों भाई चालुक्य राजकुल के नष्ट हो जाने पर नये बघेल राजा के भी मन्त्री बने रहे और उसका खज़ाना भी उन्होंने अपने उचित शासन से भरा। कहते हैं कि एक नागर ब्राह्मण की साज़िश से उनकी जान पर आ बनी, पर कवि सोमेश्वर ने राजा से कहकर उनकी जान बचाई।

इनमें पहला मन्दिर विमल का बनवाया जैन तीर्थंकर आदिनाथ का है, दूसरा तेजपाल-वस्तुपाल का बनवाया तीर्थंकर नेमिनाथ का है। इनके अलावा दूसरे तीर्थंकरों की मूर्तियां भी जहां-तहां हैं। मन्दिर ऊंची दीवारों से घिरे

हुए हैं। साधारण हिन्दू मन्दिर दूर तक फैले मैदानों में बने हैं, पर ये जैन मन्दिर दीवारों से घिरे होने के कारण इतने अनोखे और विशाल होते हुए भी सामने सहन के अभाव से दूर से आंखों पर दूसरे मन्दिरों का-सा प्रभाव नहीं डालते। हां, भीतर एक बार घुस जाने पर मन्दिरों के काम दर्शक के ऊपर छा जाते हैं। कितना समय, कितनी कला, कितना धन इनके बनाने में खर्च किया गया है, यह कहने की बात नहीं है। पत्थर को जैसे मिट्टी बनाकर कलावन्त मूरतें सिरजते चले गए हैं। दिलवाड़ा के मन्दिर अपने तरह की कला में बेजोड़ हैं।



उड़ीसा के मन्दिर

उड़ीसा के मन्दिर : भारत तो मन्दिरों का जंगल है। इसमें न तो मन्दिरों की संख्या का कोई अन्त है न उनकी सुघराई का कोई मान। दोनों अपार हैं। जितनी श्रद्धा इस देश में थी, जितनी कला थी, जितना धन था, उसका भरपूर इस्तेमाल इन मन्दिरों की बनावट में किया गया—कश्मीर-हिमालय की चोटी से कुमारी अन्तरीप तक, सागर से सागर तक।

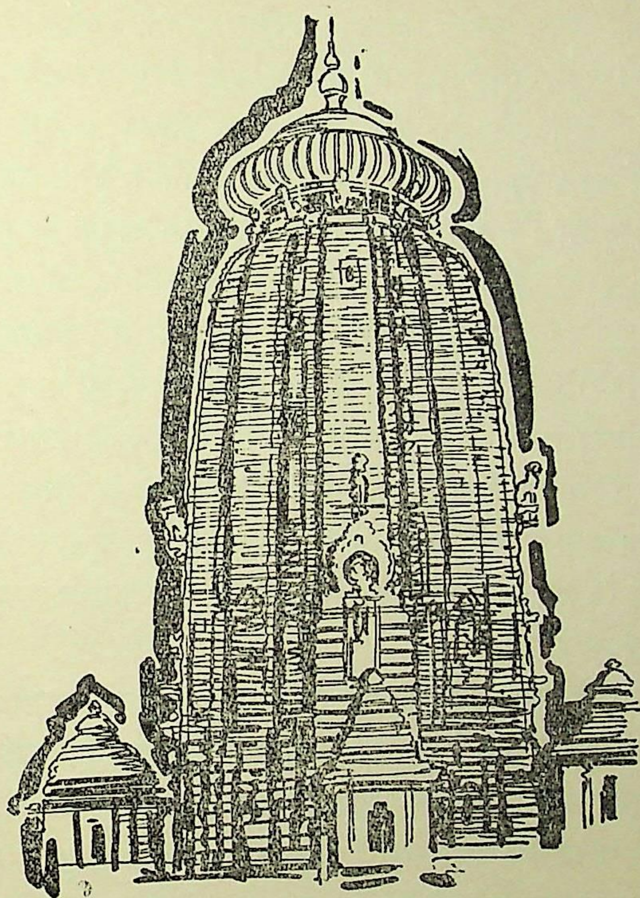
फिर भी उड़ीसा के मन्दिरों की अपनी जात है, दूसरे मन्दिरों से बिलकुल अलग। वैसे तो वहां सातवीं सदी से ही मन्दिर बनने लगे थे और तेरहवीं-चौदहवीं सदी तक लगातार बनते रहे थे, पर ग्यारहवीं सदी से तेरहवीं सदी तक करीब दो सौ साल तो इस देश के लिए विशेष महत्त्व के रहे हैं। उस बीच लगातार राजों-कलावन्तों की छेनी

जड़ पत्थर से टकराती रही है और एक से एक सजीव, एक से एक नयनाभिराम मन्दिर अपनी अनगिनत मूरतों के साथ खड़े होते गए हैं। इन्हींमें भुवनेश्वर के लिंगराज, कनारक के सूर्य और पुरी के जगन्नाथ मन्दिर भी हैं।

उड़ीसा में पुरी का ज़िला मन्दिरों में बड़ा उदार है। जैसे उसका सागर बालू के तीर पर अनन्त सीपी बिखेरता है वैसे ही वहां की जमीन अच्छा पत्थर उगलती है। उसी पत्थर से उड़ीसा के ये प्रसिद्ध मन्दिर बने हैं। इन मन्दिरों में सबसे विशाल लिंगराज का शिव मन्दिर है। यह भुवनेश्वर में है। भुवनेश्वर में अब उड़ीसा की राजधानी बन रही है।

भुवनेश्वर के मन्दिरों की कोई गिनती नहीं है। वे कई सौ हैं। उनके ऊपर बाहर की ओर नंगी भोग में लगी सैकड़ों मूरतें बनी हैं। इन मूरतों की खूबसूरती और मन्दिरों की बनावट की तारीफ लिखी नहीं जा सकती। वह बस देखने की चीज़ है। उनमें सबसे ऊंचा लिंगराज का मन्दिर ग्यारहवीं सदी के शुरू में बना था। उसका वर्गाकार मंडप काफी ऊंचा है और उसका शिखर तो बस आसमान चीरता दूर ऊंचा चला गया है। शिखर की रेखाएं सीधी हैं, केवल चोटी पर जाकर वे मुड़ी हैं।

कहते हैं कि मन्दिर को चाहे जितना भी सुन्दर बनाओ



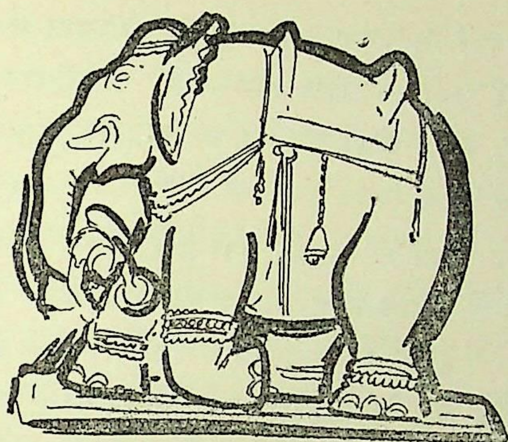
भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर

वह किताबों में लिखे नमूने से घटकर ही होगा। पर यह लिंगराज का मन्दिर किताबी नमूनों से भी बढ़ गया है।

इसका उतार-चढ़ाव, इसका दमखम, इसकी लोच अपना सानी नहीं रखती— जैसे सांचे में ढाल दिए गए हैं।

सालों लगे थे इसके बनने में। इसपर लाखों व्यय हुआ था। हज़ारों मजदूरों ने इसके बनाने में अपना पसीना बहाया था। तब जाकर कहीं यह अद्भुत मन्दिर खड़ा हुआ, तब इसका शिखर इतना उठा कि बादलों में खो गया। इस मन्दिर को उड़ीसा के राजा केसरियों ने बनवाया। केसरियों ने और कुछ नहीं किया। बस मन्दिर ही बनवाए। चालुक्यों-चोलों ने उन्हें लूटा, पालों-सेनों ने उन्हें मार-मारकर बेदम कर दिया, पूरबी गंग राजा तो उन्हें निगल ही गए। पर केसरी राजा मन्दिर बनवाते रहे, भुवनेश्वर के मन्दिरों को, खासकर इस लिंगराज मन्दिर को, बनाकर वे अमर हो गए।

इसी तरह कनारक का सूर्य का मन्दिर भी महान है। समुन्दर के किनारे बालू की ज़मीन पर खड़ा है, सदियों खड़ा रहा है, अकेला। समुन्दर की नमकीन हवा इसके उस पंजर में नमी भरती रहती है जो कभी पूरा नहीं बन सका था और सदियों की अपनी नोनी मार से सागर की हवा ने उसे जर्जर बना दिया है। पर जो कुछ उस मन्दिर का बच रहा है, वह भी इतना बताने के लिए काफी है कि उसका-सा देश-विदेश में कुछ भी नहीं।



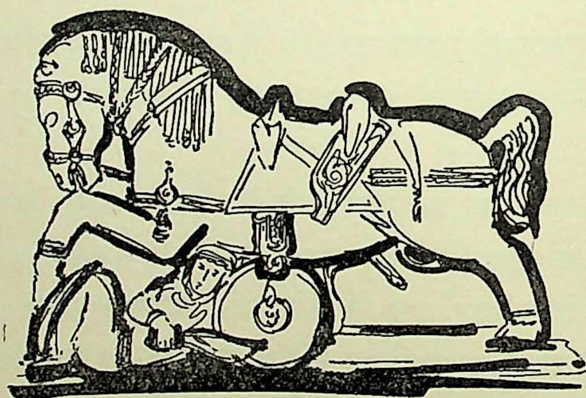
कोणार्क मन्दिर की एक सजीव मूर्ति

क्या खूबसूरती, क्या मूरतों की सजीवता, क्या सिरजन की कला—सभी बातों में वह बेजोड़ है, मन्दिरों की इमारती कला में लासानी।

सूरज का मन्दिर होने से इसका नाम कोणार्क या कनारक पड़ा। उसे 'काला पगोडा' भी कहते हैं। भारत में सूरज के मन्दिर कम ही बने; जैसे कश्मीर में मार्तण्ड का, बहराइच में बालार्क का, वैसे ही यह उड़ीसा में कनारक का। इसकी बाहरी दीवार डेढ़ सौ गज़ लम्बी, सौ गज़ चौड़ी है। इसके शिखर की ऊंचाई लिंगराज और जगन्नाथ के शिखरों से कम है। पर इसकी विशेषता इसके शिखर की ऊंचाई में नहीं, इसकी चौड़ाई और पगोडा शैली में है, इसकी

सजीव मूरतों में, इसके बहते जीवन की धारा में है। यह शिखरदार नहीं चौपहल इमारत है, छतरीदार, एक के ऊपर एक, थोड़ी-थोड़ी दूर पर, छः छतरियां और एक-एक छतरी पर छः-छः और।

इसमें ग्रहों की मूरतें बनी हैं। वे अकेली-अकेली भी गज़ब की हैं, साथ-साथ भी उनकी सजीवता जैसे बहती धारा है। इंच-इंच से ज़िन्दगी जैसे पैंग मारती है। सूरज के रथ के घोड़े बस देखने ही लायक हैं, उनका वर्णन नहीं हो सकता। इतनी ताकत, इतनी तेज़ी है उनमें कि लगता है



सूरज के रथ का एक घोड़ा

उनको पकड़े खड़ा सईस उन्हें सम्हाल नहीं पाता। लगता है हवा में वे उड़ चलेंगे। उनके खुर, पुट्ठे, नथने सभी जैसे फड़फड़ा रहे हैं, पत्थर का रथ स्वयं जैसे सबल है, गतिमान।

उसके चक्के, उनकी धुरी, उनके अरे, सभी चलते-से लगते हैं। कलाकार जैसे विश्वकर्मा बन गया है, मूरत पर मूरत अपनी जादू की छेनी से कोरता चला गया है।

कनारक के मन्दिर को केसरी कुल के राजा नरसिंह ने तेरहवीं सदी में बनवाया था। मन्दिर पूरा बन न सका था और किसी कारण अधूरा ही छोड़ दिया गया था; पर जो है वह भी अच्छे से अच्छे मंदिर से खूबसूरत है। अकबर के दोस्त और मन्त्री और कलापारखी अबुल फ़ज़ल ने इस मन्दिर की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मन्दिर अपनी समूची आकृति को पाकर अपनी आखिरी लुनाई से चमके हैं, पर यह कनारक का मन्दिर अधूरा ही, बगैर कलाकार का आखिरी परस पाए ही अमर हो गया है।

कहते हैं, पुरी— जगन्नाथ का मन्दिर एक धोखा है, क्योंकि कला के विचार से कनारक और लिंगराज के मन्दिरों के सामने वह कुछ भी नहीं है। जितने ही महान् कला की नज़र से वे हैं उतना ही अकिंचन यह है। पर वह आज भी जीवित है, आज भी उसपर चढ़ावा चढ़ता है, आज भी वह मन्दिर भारत के कोने-कोने से जात्री खींचता है। उसका तीरथ किए बिना कोई श्रद्धावान हिन्दू नहीं मरता। कला के पारखियों का विचार है कि उसके बनवाने वाले राजाओं ने इसी चढ़ावे के लिए उसकी पवित्रता का प्रचार

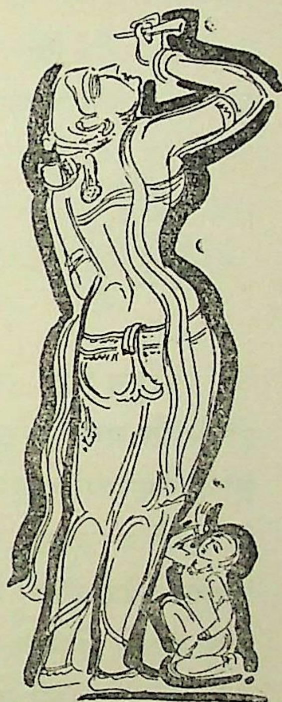
किया और प्रचार के कारण ही उसे इतनी ख्याति मिली।

केसरियों को जीतने वाले दक्खिन के गंग परिवार के राजा अनन्त वर्मन चोड़गंग ने पुरी का यह मन्दिर बनवाया। वैसे है यह भी भुवनेश्वर के मन्दिरों की ही शक्ल का बना, पर कला के विचार से यह, जैसा कहा जा चुका है, काफी घटिया है। इसका शिखर १६० फुट ऊंचा है और रथ-यात्रा के दिनों में इनकी महिमा बेहद बढ़ जाती है। लाखों यात्री वहां जाते और उसके रथ को खींचते हैं। कभी उसके रथ के पहियों के नीचे दबकर मर जाना स्वर्गारोहण का साधन माना जाता था और अनेक उसीसे कुचलकर अपनी सद्‌गति बनाते थे।

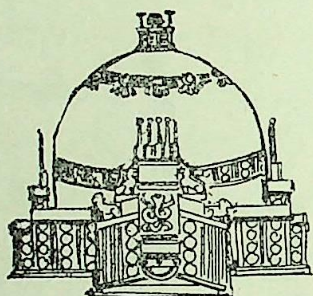
इसके देवता जगन्नाथ की विशेष महिमा है। जगन्नाथ विष्णु के वह अवतार माने जाते हैं जो बुद्ध में हुआ था। बुद्ध ने जात-पांत को धिक्कारा था। इससे इस मंदिर के आंगन में भी जात-पांत नहीं मानी जाती और डोम और ब्राह्मण एक-दूसरे का छुआ प्रसाद पाते हैं। इस विचार से यह मंदिर बहुत अच्छा है। इसके देवता की मूर्ति और मंदिरों के देवताओं की तरह पत्थर की नहीं, लकड़ी की बनती है और हर साल सागर में बहा दी जाती है।

उड़ीसा के इन मंदिरों का असर भारत के दूसरे मन्दिरों पर भी पड़ा। बुन्देलखण्ड के चन्देल मन्दिर भी

अधिकतर इनकी शैली में ही बने। उनका रूप भी उन्हींकी तरह सिरजा गया, उनकी मूरतें और बाहरी भाग के दृश्य भी वैसे ही बने। खजुराहो के मन्दिर भी देश के सुन्दर-तम मन्दिरों में गिने जाते हैं। चन्देल राजाओं की राजधानी तो महोबा थी, पर धार्मिक राजधानी उनकी यहीं खजुराहो में थी। कला की सुन्दर से सुन्दर कृतियों से उन्होंने इस नगर को भरा-पुरा था। वहां भी भुवनेश्वर की ही तरह मन्दिरों की संख्या बड़ी है। करीब १००० ई० के बने वहां के विशाल और सुन्दर मन्दिरों की संख्या बीस से अधिक है। इनमें कन्दरिया महादेव का मन्दिर तो अनुपम है; उसकी शोभा बखानी नहीं जा सकती।



खजुराहो के मन्दिर की एक मूर्ति

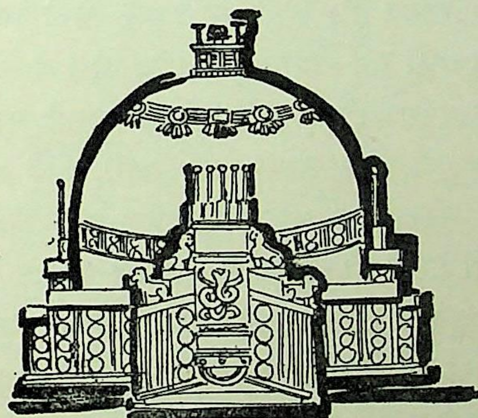


भरहुत और सांची

भरहुत और सांची : उत्तर और दक्खिन भारत की ही भांति मध्य भारत भी मंदिरों का धनी है। सच पूछिए तो वहां की अनेक इमारतें अत्यन्त प्राचीन काल की हैं, आज से कोई दो हजार साल से भी पहले की बनी। इन्हींमें भरहुत और सांची के स्तूप हैं। भरहुत नागोद के पास है और सांची भोपाल के पास।

स्तूप मामूली तौर से ईंट-पत्थरों की ठोस इमारत होता है। तब वह बुद्ध या महावीर की किसी प्रसिद्ध घटना का यादगार होता है। एक प्रकार का स्तूप खोखला भी होता है जिसमें बुद्ध या उनके चेलों आदि की भस्म या हड्डियां रखी जाती हैं। भारत के सबसे प्राचीन स्तूप भरहुत, सांची और अमरावती के हैं। भरहुत नागोद के पास मध्य प्रदेश में है, सांची भी उसी प्रदेश में भोपाल के पास है और अमरावती

आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा नदी के दक्खिनी तीर पर है। इन स्तूपों की अपनी-अपनी रेलिंगें हैं। इन रेलिंगों पर एक से एक सुन्दर मूरतें बनी हैं। सांची के स्तूप मौर्य काल में बने, अशोक के ज़माने में, आज से कोई सवा दो हज़ार साल पहले। पर उसकी रेलिंगें करीब सौ-सवा सौ साल बाद बनीं। भरहुत की रेलिंगें सांची से कुछ पहले की हैं, अमरावती के बाद की। यहां हम सांची के स्तूप और तोरण की बात कहेंगे।



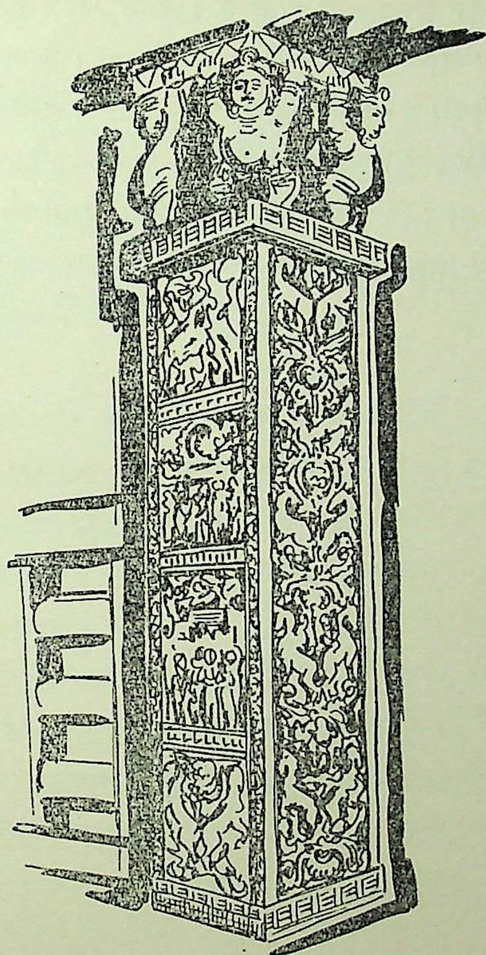
सांची का स्तूप

सांची के स्तूप करीब तीन सौ फुट ऊंची पहाड़ी पर बने हैं। उनमें से प्रधान ईंट का बना है। ऊपर उसके पत्थर की पट्टियां बाद में जड़ दी गई हैं। उसका व्यास १२० फुट और ऊंचाई ५४ फुट है। और स्तूपों की ही तरह वह

भी अर्ध वृत्ताकार है, आधी कटी नारंगी की तरह गोल। चारों ओर चबूतरा दौड़ता है और दखिन की ओर दो ज़ीने हैं, मस्तक पर एक के ऊपर एक कई छतरियां बनी हुई हैं। फिर प्रदक्षिणा-भूमि है, जिसमें चलकर स्तूप का चक्कर करते थे। और बाहर से पत्थर की अद्भुत रेलिंगें हैं जिनके चारों दिशाओं में चार तोरण द्वार हैं।

रेलिंगों पर जो दुनिया बसाई गई है, उसका वर्णन कर सकना कठिन है। पत्थर में उभारे देवी-देवता, नाग-नागी, यक्ष-यक्षी बड़े सजीव हैं। बीच-बीच में गोल कटाव के भीतर नर-नारियों के नयनाभिराम मस्तक, कमल, खिले फूल, घड़ियाल, सिंह, हाथी, ऊंट, पक्षी, घोड़े और दूसरे जीव-जन्तु तराश कर बनाए हुए हैं। इनके तोरणों की सुघराई तो देखने ही लायक है। तोरण एक के ऊपर एक तेहरे बने हुए हैं। इनपर एक से एक सुन्दर सूरतें कोरी और उभारी गई हैं। जलूस आदि का चित्रण इतना सही हुआ है कि लगता है उसके आदमी-जानवर सभी गतिमान हैं। उस काल का जीवन-स्तर इन रेलिंगों और तोरणों पर लहरा उठा है। भरहुत की रेलिंग के टुकड़े कलकत्ता के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

अमरावती का स्तूप तो आज से करीब बाईस सौ साल पहले बना। इसके ऊपर संगमरमर की पट्टियां हैं जिनपर



रेलिंग पर खुद्री मूर्तियां

सैकड़ों सुन्दर आकृतियां खुदी हैं। ये पट्टियां स्तूप बनने के करीब तीन-चार सौ साल बाद जोड़ी गईं। इनपर उभारी नर-नारियों की मूरतें जितनी सुन्दर हैं उतनी सुन्दर आकार-प्रकार के विचार से कभी कहीं उस काल नहीं बनीं। इन पट्टियों के लोभ से वहां के जमींदारों ने प्रायः समूचे स्तूप को तोड़कर नंगा कर दिया।



दकन के गुफा-मंदिर, अजंता और एलोरा

पत्थर और ईंट के मन्दिरों का तो इस देश में कोई अन्त ही नहीं है। एक से एक विशाल, एक से एक बड़े मन्दिर इसकी ज़मीन पर खड़े हुए, पर उनसे भी बढ़कर वे हैं जो पहाड़ को काटकर बनाए गए। सोचिए ज़रा, पहाड़ का दौड़ता हुआ सिलसिला और उसकी ठोस लोहे की सी चट्टानी दीवार को काटकर खोखला कर देना, उसमें एक से एक मन्दिर-महल काट-बनाकर उनमें मूरतें गढ़ देना, उनकी दीवारों पर सुन्दर-से सुचित्र बना देना ! यह भारत के ही भक्तों और कलावन्तों के बूते की बात थी।

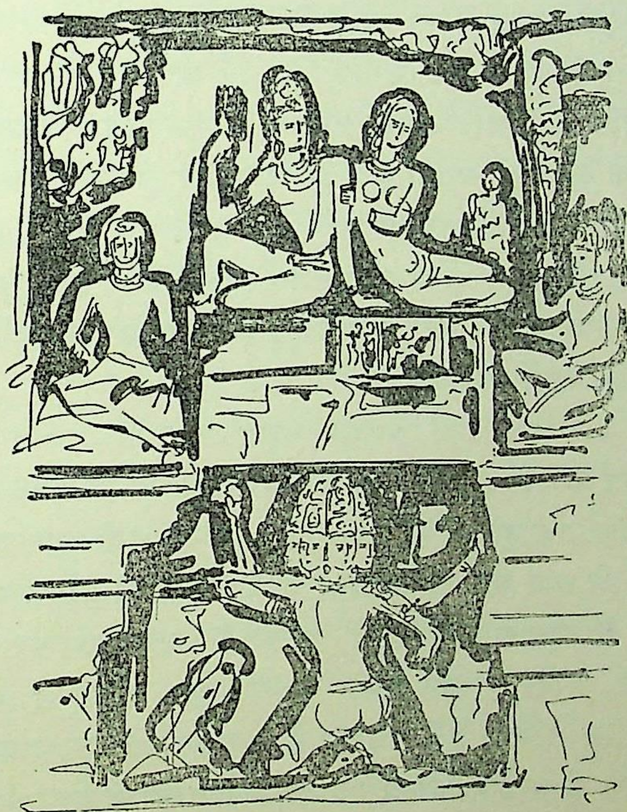
बुद्ध के चेले दुनिया से अलग रहना चाहते थे। उन्होंने ही अपने रहने के लिए जंगल-पहाड़ों में रहने और पूजा के लिए एकान्त खोजे, और उनके धर्म में नेह रखने वाले राजाओं और सेठों ने उनके लिए जंगल में पहाड़ काटकर

रहने के लिए बड़े-बड़े हाल और समाधि लगाने के लिए छोटी-छोटी कोठरियां, पूजा के लिए विशाल मन्दिर बनवा दिए। अजन्ता और एलोरा के गुफा-मन्दिर इसी प्रकार पहाड़ों में कटे हुए हैं। ऐसे ही भाजा, कार्ले, कन्हेरी के भी, एलीफैंटा के भी। इनकी गहराई और बनाने की करामात देखकर दिमाग चकराने लगता है। आदमी अटकल लगा सकता है कि इनको बनाने में कितनी मेहनत लगी होगी, कितना पसीना बहा होगा, कितना धन खर्च हुआ होगा।

विन्ध्याचल के नीचे पश्चिम की ओर नक्शे में दक्खिन को दौड़ती सह्याद्रि की पहाड़ियां चली गई हैं, उन्हींमें अधिकतर ये गुफा-मन्दिर कटे हैं। बम्बई प्रांत और औरंगाबाद से थोड़ी ही दूर पर एलोरा की गुफाएं हैं। और उनसे करीब ७५ मील पर अजन्ता की हैं, आज से कोई दो हजार साल पुरानी। जिनमें चित्र हजार साल तक बनते गए हैं। पारिजात के पेड़ों की कतारों के खत्म होते ही अजन्ता की गुफाओं का सिलसिला शुरू होता है। नीचे पतली नदी बहती है, ऊपर पहाड़ी दीवार में २६ गुफाएं खुदी हैं, जिनमें कई बौद्ध मन्दिर भी हैं। इनकी दीवारों पर जो बुद्ध के चित्र बने हैं, उनसे इन गुफाओं की सुघराई इतनी बढ़ गई है कि उनका-सा दुनिया में कहीं कुछ नहीं।

औरंगाबाद से थोड़ी ही दूर पर दौलताबाद के किले के

पास ही एलोरा के बौद्ध, जैन और हिन्दू गुफा-मन्दिर हैं। ये मन्दिर अधिकतर हिन्दुओं के, आज से बारह सौ साल पहले बने। जैसे अजन्ता अपने चित्रों के लिए प्रसिद्ध है वैसे ही एलोरा अपनी मूरतों के लिए विख्यात है। प्रधान मन्दिर



एलोरा गुफा की मूरतें

वहां हिन्दुओं के हैं—दशावतार, रामेश्वर, सीता की कहानी, कैलास। कैलास तो गुफा-मन्दिरों में अचरज है। तीस लाख हाथ पत्थर काटा गया है। कितनी ही पौराणिक कहानियां उसमें मूरतों के ज़रिए लिखी गई हैं। उसके मोटे खम्भों पर ऐसी नक्काशी की हुई है कि लगता है कि कलावन्तों ने उनपर मोती-मानिक उतार दिए हैं। कैलास की इमारत दोमंज़िली है और उसकी दीवारों पर कटे दृश्य इतने सजीव हैं कि देखते ही बनता है। इसे राष्ट्रकूट राजाओं ने अनन्त धन व्यय करके बनवाया था। एलोरा में एक से एक लगे, पहाड़ के कटे, करीब तीन दर्जन मन्दिर हैं। इतने सुन्दर एक जगह गुफा-मन्दिर चीन के तुन-हुवांग को छोड़कर दुनिया में और कहीं नहीं बने।

एलोरा से कहीं प्राचीन भाजा का गुफा मन्दिर है। भारत के गुफा-मन्दिर का आरम्भ भाजा से ही होता है। अशोक जब भारत पर राज कर रहा था, तभी या उसके कुछ ही बाद यह मन्दिर बना था। भाजा की प्रसिद्ध गुफा पूना से बीस मील की दूरी पर ही है। उसमें रथ पर चढ़े सूरज और एरावत हाथी पर चढ़े इन्द्र की मूरतें बड़ी सुन्दरता से कटी हैं। समुन्दर से समुन्दर तक सारा दकन अशोक के बाद ही आन्ध्र सातवाहन राजाओं के राज में आ गया था। वहीं भाजा, कार्ले, कन्हेरी, एलिफैंटा, एलोरा,

अजन्ता, बादामी आदि के गुफा-मन्दिर बने ।

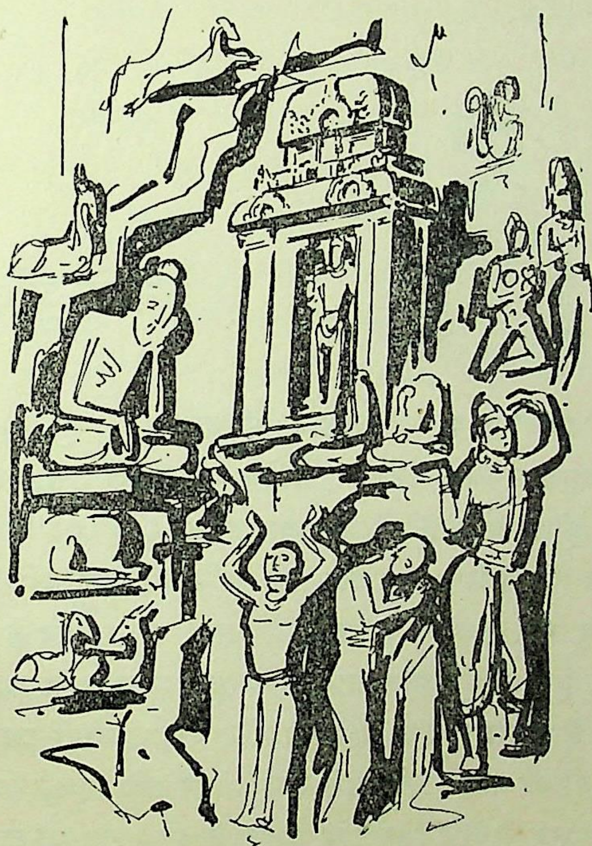
भाजा के पास ही कार्ले की गुफा है । आज से करीब दो हज़ार साल पहले की बनी । गुफा क्या है मन्दिर है, बौद्धों का मन्दिर, जो पहाड़ काटकर बनाया गया है । बौद्ध लोग अपने मन्दिर को चैत्य कहा करते थे। अजन्ता, भाजा, कार्ले, कन्हेरी आदि की गुफाएं अधिकतर चैत्य ही हैं। भाजा के चैत्य की मूरतें उतनी ही प्राचीन हैं जितनी वह गुफा । और सुन्दरता के विचार से तो वे इतनी मनोरम हैं जितनी कोई दूसरी गुफा नहीं । कार्ले का गुफा-मन्दिर भारत के अमर मंदिरों में से है ।

कन्हेरी की प्रसिद्ध गुफा बम्बई के पास ही है, करीब २५ मील की दूरी पर ही । इसीसे वहां बम्बइया घुमक्कड़ों की भीड़ लगी रहती है । यह गुफा भी करीब-करीब तभी बनी थी जब कार्ले की बनी थी । उसमें भी सैकड़ों मूरतें अपनी दुनिया बसाए हुए हैं, यद्यपि सुन्दरता में वे कार्ले की मूरतों का मुकाबला नहीं कर सकतीं ।

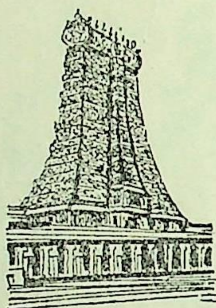
एलिफैंटा बम्बई के बन्दरगाह के पास ही है, एक छोटे टापू पर खड़ा, जहां लोग स्टीमर से जाया करते हैं । पहाड़ काटकर गुफा बनाई गई है । इसकी मूरतें भी एलोरा की मूरतों की ही तरह ईसा की सातवीं-आठवीं सदी में बनी थीं । गुफा-मंदिर शिव का है, अकेला । उसमें अधिकतर

शिव का परिवार ही मूर्तिमान हुआ है, कुल करीब एक दर्जन मूर्तियां हैं। इनमें प्रधान त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), भैरव और गंगाधर की हैं। पर एलिफैंटा की मूरतों में गजब की सुन्दरता है। कम गुफा-मंदिर ऐसे हैं जहां पत्थर में इतनी सुन्दर और सही आकृतियां कोरी और काटी गई हैं, जितनी इस एलिफैंटा के शिव-मंदिर में।

इस गुफा-मन्दिरों की परम्परा में दक्षिण भारत के महाबलिपुरम् के पहाड़ में कटे मन्दिर भी हैं। ये मन्दिर भी लगभग तभी बने जब एलिफैंटा और एलोरा के बने थे। दक्षिण में कभी पल्लव राजाओं का राज था। महाबलिपुरम् के ये प्रसिद्ध मन्दिर उन्हीं पल्लव राजाओं के बनवाए हुए हैं। मंदिर की पहाड़ी दीवारें मूरतों से भर दी गई हैं। आदमी और जानवर, देवता और राक्षस इस खूबी के साथ सिरजे गए हैं कि लगता है कि कलाकार सिरजनहार बन गया है। अर्जुन का पशुपति शिव के अस्त्र के लिए तप, कला का अनुपम नमूना है। इसी प्रकार गंगावतरण भी—गंगा का पृथ्वी पर उतरना—अचरज की चातुरी से दिखाया गया है। मनुष्य, जानवर सभी गंगा के भूमि पर आने से प्रसन्न हो उठे हैं। उनकी खलबली पत्थर में जैसे जी उठी है।



अर्जुन का तप



दकन के मन्दिर

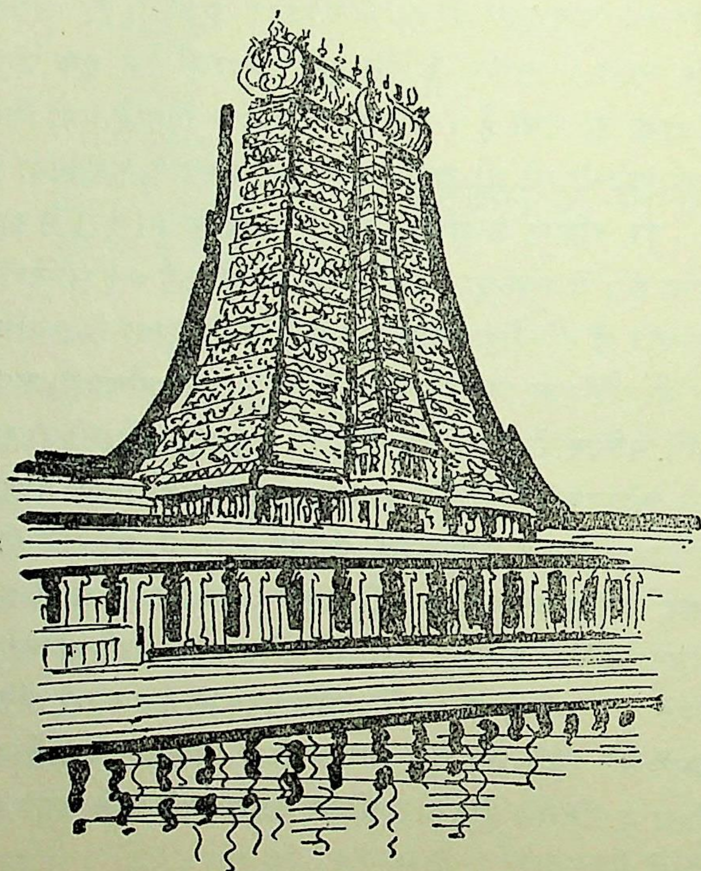
'दकन' नाम भी वास्तव में 'दक्षिण' से ही बना है, पर बहुत समय से उसका प्रयोग भारत के उस भाग के लिए होता रहा है जो विन्ध्याचल और कृष्णा के बीच पड़ता है। कृष्णा के दक्षिण की भूमि को शुद्ध दक्षिण या दक्षिण भारत कहते हैं। इसका उत्तरी भाग दकन से मिल जाता है। मैसूर और आन्ध्र के कुछ भाग इसी खण्ड में पड़ते हैं। इस भूखण्ड में उत्तर और दक्षिण दोनों प्रकार के मन्दिरों की बनावट के मिले-जुले मन्दिर बने। इनके विशाल केन्द्र मैसूर के हले बिद और बेलूर में बने। इन मन्दिरों की सुन्दरता कहने की बात नहीं है, कहीं भी वह नहीं जा सकती। विशाल फैले हुए इनके आंगन और बरामदे, सैकड़ों-हज़ारों इनकी दीवारों के खम्भे, ऊंचे आकाशचुम्बी इनके कलश-कंगूरे बयान की चीज़ नहीं हैं, देखने की हैं। इनके

पास ही और उत्तर में विजयनगर के खण्डहर हंफी के पास आज भी खड़े हैं। विजयनगर का साम्राज्य आज से कोई पांच सौ साल पहले सारे दकन पर फैला हुआ था। विजयनगर की राजधानी के ही ये खण्डहर हंफी में हैं, मन्दिर और महल। लगता है जैसे टूटी इमारतों का एक जंगल ही खड़ा हो गया है। आदमी के कौशल ने इन्हें खड़ा किया और आदमी की ही जहालत ने इन्हें बरबाद कर दिया।

दूर दक्षिण के मन्दिर हमारे उत्तर के मन्दिरों से बहुत भिन्न हैं। वे एक-एक अकेले मन्दिर नहीं, कई-कई मन्दिरों के परिवार हैं। मन्दिर क्या है एक गांव ही होता है। मन्दिर का बाहरी द्वार मन्दिर की ही तरह ऊंचा होता है, कभी-कभी मन्दिर से भी ऊंचा, एक पर एक चढ़ी मंजिलों वाला। उसे 'गोपुरम्' कहते हैं। इसी गोपुरम् के पीछे अनेक मंजिलों के शिखर वाला गगनचुम्बी मन्दिर होता है, दूर तक फैला हुआ, अनेक बरामदों-कमरों वाला। मन्दिर के चारों ओर दौड़ता आंगन होता है। उसीमें लोग मन्दिर की परिकरमा करते हैं। आंगन के चारों ओर परकोटे के सहारे सैकड़ों कमरे बने रहते हैं। एक लम्बा-चौड़ा तालाब भी आंगन में होता है, जिससे हाथ-पैर धोकर दर्शन करने वाले भक्त शुद्ध हो लें।

इस प्रकार के मन्दिरों की संख्या दक्षिण में थोड़ी नहीं

हज़ारों में है। कांजीवरम्, धर्मपुरा, तन्जौर, रामेश्वरम्, सर्वत्र इन अचरज-भरे मन्दिरों की भरमार है। इन नगरों के एक-एक मंदिर के वर्णन के लिए समूची पोथी की



दक्षिण का एक विशाल मन्दिर

ज़रूरत होगी। इनकी लम्बाई-चौड़ाई उत्तर के मन्दिरों से कई गुनी होती है। पहाड़ की गुफाएं खोदकर मन्दिर बनाने में तो अधिक मेहनत का खर्च हुआ है। इन मंदिरों में बुद्धि और कला का उपयोग हुआ है। ये मन्दिर संसार की कला के अचरज के नमूने हैं।

उपसंहार

भारत की भूमि प्रकृति ने बनाई है, पर उसके ऊपर मन्दिरों की खूबसूरती आदमी ने सिरजी है। मन्दिर और मस्जिदें, लाट और मीनारें, महल और मकबरे एक से एक अभिराम इस धरा पर उठते चले गए हैं जिनके मुकाबले की इमारतें दुनिया में नहीं हैं।

संसार के हज़ारों घुमक्कड़ और पारखी समुन्दर पार से इन इमारतों को देखने आते हैं और देखकर हैरत में पड़ जाते हैं। इन इमारतों की दुनिया भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक उठती चली गई है। यह हमारे विश्वास और आस्था की दुनिया है, जो हमारे कलाकारों के तप और साधना से खड़ी हुई है। सारे देश को ये इमारतें एक सूत में नाथकर उसकी संस्कृति और सभ्यता को एकरूपता देती हैं।

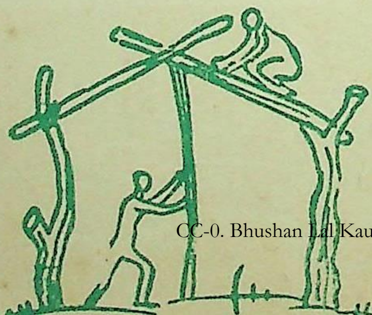
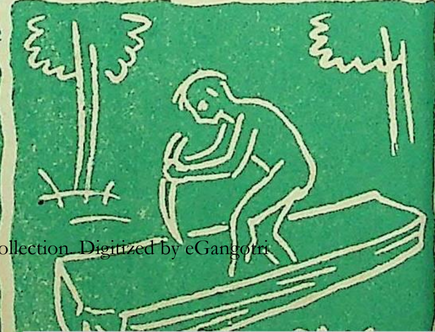
मन्दिरों-मस्जिदों का यह परिवार भारत की कला और भक्ति का है, आदमी का बनाया, संसार का गौरव। इन्हीं-की छाया में देश की इन्सानियत सांस लेती है। इन्हींके देवताओं की सौगन्ध खाती है। इनके खंडहर भारत के शालीन इतिहास और गौरव के प्रतीक बनते हैं। भारत के बच्चे-बूढ़े उनपर गर्व करते हैं। और ये खंडहर संसार के लाख-लाख रत्नों से कीमती हैं, हमारी ममता और मोह के पोर-पोर में जड़े हैं ये रतन। जब तक सूरज और चांद रहें, जब तक गंगा-जमुना की धारा बहे तब तक ये रतन चमकते रहें।

◦ ◦ ◦

4–66–2–2

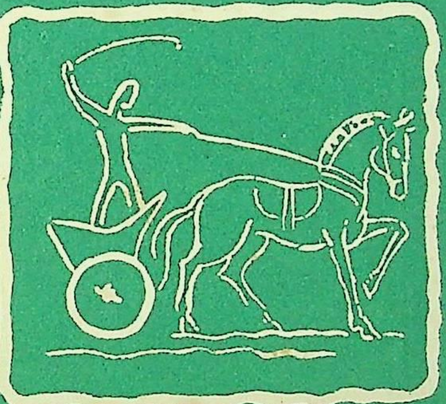
















स्वदेश-परिचय-पुस्तकमाला

यह पुस्तक-माला भारत के सम्बन्ध में एक ज्ञानकोश के समान है। हमें अपने देश के वैभव से अवश्य परिचित होना चाहिए। मोटा टाइप, सरल भाषा और आकर्षक बहुरंगे कवर।

डा० भगवतशरण उपाध्याय द्वारा लिखित

भारत की कहानी	१·२५
भारतीय संस्कृति की कहानी	१·२५
भारतीय संस्कृति के विस्तार की कहानी	०·७५
भारतीय नगरों की कहानी	१·२५
भारतीय नदियों की कहानी	०·७५
भारतीय साहित्यों की कहानी	१·२५
भारतीय चित्रकला की कहानी	१·२५
भारतीय मूर्तिकला की कहानी	१·२५
भारतीय संगीत की कहानी	१·२५
भारतीय भवनों की कहानी	१·२५
कितना सुन्दर देश हमारा	१·२५
भारतीय स्वाधीनता की कहानी	१·२५

प्रत्येक पुस्तक में अनेक चित्र

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

